Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्तामणि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ श्रीः ॥

न श्वेतांशुवदन्धकारदलनादुद्योतितं रोदसी,
नाप्यैरावतवन्निरस्तदितिजत्रासः कृतो वासवः।
नो 'चिन्तामणि' रत्नवत्त्रिभुवने छिन्ना विपद्धार्थिनां,
भूत्वा तस्य हरेरुरःप्रणयिना किं कौस्तुभेनार्जितम् ॥

• • •

चन्द्रमपि उज्ज्वलकिरण तिमिर-नाशक है गगनमें।
हस्तमपि इन्द्रसक्षक त्रासनाशक दैत्यरणमें॥
हरि-हृदय-प्रिय-हार कौस्तुभ दृष्टि दर्शनसे परे।
सर्व-अर्थ-समर्थ 'चिन्तामणि' विपद् विनशन करे॥

शुभ कामनाओं सहित

नरोत्तमदास भाउ०

ज्वैलर्स

४३२ लेमिंगटन रोड

बम्बई-४

के

सौजन्यसे

तारः "दासनरोत्तम"

फोन नं० ३५६३३३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

- प्राचीन-अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान की प्रतिनिधि
- पुरुषार्थ प्रतिपादक
- प्रसन्न-गम्भीर पत्रिका

चिन्तामणि

संस्थापक: अनन्त श्रीविभूषित पू.पा. स्वामी श्री अखण्डानन्द जी सरस्वती महाराज

वर्ष ३ अंक २

LIBRARY
No. . ...
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS.

★

सम्पादक:
ब्र. प्रेमानन्द 'दादा'
विश्वम्भर नाथ द्विवेदी
आनन्दकानन
सी. के. ३६/२०
वाराणसी - १
फोन: २६८३

वार्षिक मूल्य • चार रुपये मात्र
एक प्रति • सवा रुपया मात्र
विदेश में
वार्षिक मूल्य छः शिलिंग

व्यवस्थापक
सत्साहित्यप्रकाशनट्रस्ट,
'विपुल' २८/१६
रिजरोड, मलाबार हिल
बम्बई - ६

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्तामणि

फरवरी, '६९

वर्ष : ३ अङ्क : २

★ विषयक्रम

इस अङ्कमें—लेख • अनुवाद • संस्मरण • कहानियाँ • कविताएँ

स्वस्त्ययन [१३३] निगम-मन्थन विश्वकर्म-सूक्त [१३४] भक्ति और मुक्ति [१३७] श्रीहिताद्वैत : एक विवेचन [१३८] नमो नमस्ते [१४६] वात्सल्य [१४७] चटोरे ! [१४८] शकटभञ्जन लीला [१४९] महात्मा और राजा [१५३] विद्वानोंसे [१५४] प्रेम-नगरकी गलियोंमें [१५९] सास-बहू [१६०] श्री श्री हरिबाबाजीके मुखारविन्दसे [१६१] लाला लब्भूशाह [१६२] तुम, मैं एक [१६३] अपराधी कौन नहीं है [१६४] छोटी वस्तु बड़ा गुण ! [१६५] याद दिलाना [१६५] आनन्दवाणी [१६६] समाधि न लगनेका कारण क्या है ? [१६६] रे ! रे ! [१६६] वासनाके विलास [१६७] वागवानी [१७४] दो रोटी और इतना काम ? [१७५] श्रोता [१७८] मैं चार वेदका ज्ञाता हूँ [१८१] रसका स्वरूप : एक दृष्टि [१८२] गोदमें सो सकते हो [१८३] पहले कौन ? [१८६] अर्द्धनारीश्वर [१९०] ईश्वर आपके पास : एक प्रवचन [१९४] बेटा ! तुम जीत गये [१९९] प्रेम रस [२००] कच्चे या पक्के [२०१] संतोंकी होली [२०२] समर्पण [२०६] श्री वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग [२०७] माँ श्री श्री आनन्दमयीका उदार स्नेह [२१२] फाटक खोलो ! [२१३] कैसा पर्दा [२१६] भाग्य बनाम पुरुषार्थ [२१७] ज्ञानी और भक्त [२२१] संत श्री नन्ददासका होली वर्णन [२२२] संघर्ष विचारका नहीं आग्रहका [२२८] सतिगुर प्रसाद [२३०] डाक्टर : पंडित [२३३] विचार लहरें [२३४] । Guru-Purnima [239] Talks with Shree Ramdas [241].

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेखक : अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज, अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज, महामहोपाध्याय पद्मविभूषण श्री गोपीनाथ कविराज, श्री हरिबाबाजी, पण्डितप्रवर श्री रघुनाथ शर्मा, पण्डितप्रवर श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री, श्रीसीताराम शरणजी, श्रीरामचन्द्र शर्मा शास्त्री एम० ए० पी-एच० डी० सा० रत्न, श्रीपरशुराम चतुर्वेदी, शारदाप्रसाद नायक, पं० श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी, 'दादा', बाबूलाल श्रीमयंक, शिवनाथ दुबे सा०-रत्न, भक्तप्रवर श्री कोकिल साईं, श्री विद्यानन्द 'विदेह'—श्री हरिकिशनदास अग्रवाल। J. B. Surti, Shri Suryaprakash. ●

चिन्तामणि : आपकी दृष्टिमें

फरवरी ६७ की 'चिन्तामणि' में 'पुरुषार्थ' लेख पढ़ा अत्यन्त प्रभावित हुआ। आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, आयुर्वेदिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि दृष्टि-कोणोंका सुन्दर समन्वय हुआ है इसमें। सम्पूर्ण भाव-प्रसून सच्चिदानन्दके धागेसे गुंथे, यह धागा सर्वप्रविष्ट होकर भी लगभग अव्यक्त है। ठीक वैसे ही जैसे साधारण फूल-मालामें धागा, पर सारी माला गुंथी है इसी धागेसे, बहुत बड़ी विशेषता है यह। संकीर्णता, द्वेष, अनम्रता आदि अमानवीय दुर्गन्धियोंको पूरी तरह विनष्ट कर सकती है, इसकी सुगन्ध यदि अन्तसमें प्रवेश पा जाय।

क्या ही अच्छा हो पाश्चात्य जगत्-वासियोंको उनकी भाषामें पढ़नेको मिल सके। यह लेख अनुपम प्रभावोत्पादक कल्याणकर है।

—रामाश्रय दीक्षित
आर्यनगर-कानपुर

श्री 'दादा',

'चिन्तामणि'का अवलोकन-अध्ययन किया। पत्रिकाका गेट अप-मेक अप विभिन्न रंगोंमें कलात्मक होनेसे आकर्षक प्रतीत होता है। प्रकाशित साहित्यिक सामग्रीसे स्पष्ट है कि मानव-प्रवृत्तियोंका आध्यात्मिक एवं धार्मिक विकास सम्भावित है। इस तरह मानवीय विचारोंका शुद्धीकरण हो सकता है।

—गिरिधरगोपाल पाण्डेय
मानसेवी प्रतिनिधि 'शिक्षा प्रदीप'
भोपाल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आ० द्विवेदीजी,

आपकी पत्रिका नियमित रूपसे मिल रही है। पत्रिका वास्तवमें मानव-जीवनके लिए उपयोगी और आदर्श सामग्री लिये हुए है।

—सुशीलाकुमारी मित्र
प्रबन्ध सम्पादक,
'स्वास्थ्य और सौन्दर्य'
दिल्ली

प्रिय विश्वंभर,

'चिन्तामणि' के अङ्क समय-समयसे मिलते रहे। अङ्क सर्वविधि सुन्दर एवं आकर्षक बन रहे हैं। सफल सम्पादनके लिए बधाई।

—शिवनाथ दुबे
सम्पादन विभाग 'कल्याण'
गोरखपुर

हमारे स्वरूप 'दादा'

नवम्बर मासकी 'चिन्तामणि' मिली। अङ्क अपने आपमें सुन्दर बन पड़ा है। भौतिकताकी इस चिलचिलाती गर्म ऊमसभरी ग्रीष्ममें यह वर्षाका काम कर रही है। थकित तृष्णाओंके स्वेद-विन्दुओंसे सिक्त मनुष्य कुछ शान्ति-सन्तोषकी आवश्यकता महसूस करता है। वही सब कुछ इसमें पाया जाता है। इसके गुम्फित मोतियोंमें-से मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार निकाल लेते हैं। आवरण एवं मुद्रण उत्तम बन पड़ा है।

—श्री मयंक
श्रीमयंक-साहित्य-सदन
जीरन (म० प्र०)

आदरणीय सम्पादक जी,

'चिन्तामणि' पत्रिकाका अवलोकन किया, पत्रिका बेहद अच्छी लगी। वास्तवमें कल्पनासे भी अधिक ज्ञानका भण्डार छिपा हुआ है। मैं इसकी उन्नतिकी कामना करता हूँ

—प्रेम किशोर शर्मा
डालीगंज,लखनऊ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फरवरी, '९९
वर्ष : ३ अङ्क : २

स्वस्त्ययन

चिन्तामणि

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-
र्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

ऋक्० १।८९।८

दानादि गुणयुक्त देवताओ ! हम अपने कानोंसे भजनीय कल्याण-वचन श्रवण करनेमें समर्थ रहें। यज्ञ-यागादिके द्वारा आराधनीय देवताओ ! हम अपने नेत्रोंसे शोभन वस्तुके दर्शनमें समर्थ बने रहें। हम अपने स्थिर दृढ हस्त-पादादि अंगोंसे और शरीरोंसे आपको प्रसन्न करते हुए और स्तुति करते हुए प्रजापति देवके द्वारा प्रदत्त पूर्ण आयु प्राप्त करें।

भद्रम् : यह 'भज' धातुसे बना हुआ शब्द है। जो प्राणियोंके लिए भजनीय, सेवनीय और अभिगमनीय है, उसे 'भद्र' कहते हैं। निरुक्तके अनुसार इसकी दूसरी व्युत्पत्ति है 'भवद्रमयति।' इसका अर्थ है कि यह शब्द दो धातुओंसे बना है। जिसको यह प्राप्त होता है, वह सुखी होता है। तीसरी व्युत्पत्ति है—'वह कल्याणरूप पुरुषोंमें निवास करता है; वे ही उसके भाजन हैं।' पृषोदरादि होनेके कारण 'भाजन'का भद्र बन गया है। सायणाचार्यने कहा है कि देवताओंके प्रसादसे हम कल्याणवाणीका श्रवण करते रहें, कभी बहरे न हों। श्रोत्र और चक्षु भद्राभद्र विषयका श्रवण और दर्शन करते हैं। वे केवल भद्रविषयक ही हों, यह प्रार्थना की जाती है। स्कन्दस्वामी, वेङ्कटनाथ एवं मुद्गलने भी प्रायः यही अभिप्राय बताया है। पूर्ण आयुके सम्बन्धमें सायणका मत है—एक सौ सोलह या एक सौ बीस। स्कन्दस्वामी वेङ्कटनाथ सौ वर्ष बतलाते हैं, मुद्गल एक सौ बीस।

मन्त्रका अभिप्राय है कि हम कल्याण-श्रवण, शोभन दर्शन और शुभ कर्म करते हुए ही जीवन व्यतीत करें। अशुभ श्रवण-दर्शनमें प्रवृत्ति न हो, अशुभ कर्म न हो और शरीरपर बुढ़ापा, रोग आदिका आक्रमण न हो। ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

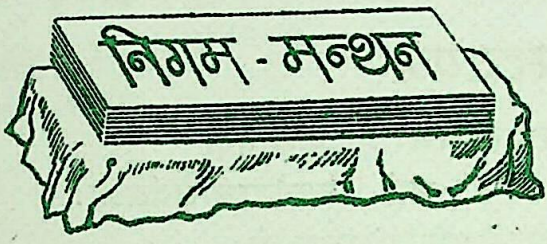

विश्वकर्म सूक्त

[ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ८२]

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ।।

विश्वकर्मा नेत्र आदि समस्त इन्द्रियोंके संघरूप शरीरका पिता है और वही इन्द्रियोंमें प्रकाशका उत्पादक है। वह परम धीर प्रज्ञावान् परिदृष्टकारी है। वह अपने सङ्कल्पसे ही जीवनदायी घृत अर्थात् जलको उत्पन्न करता है। उसके बाद उसी उदकमें इतस्ततः चङ्क्रममाण द्यावा पृथिवीकी सृष्टि करता है। यह दोनों एक-दूसरेके उपकारक हैं और परस्परानुगत हैं। जब द्यावा पृथिवीके पर्यन्त दृढ़ हो गये अर्थात् विश्वकर्माने उन्हें दृढ़ कर लिया तब वे दोनों स्वच्छन्द विस्तृत हुए अर्थात् अपने-अपने कार्य भूतधारणादि सामर्थ्यसे युक्त हुए।

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः ।।

परमात्मा प्राण और प्रकाशसे युक्त होकर विश्वकर्मा बहुकर्मा होता है। वह वस्तुतः विमना—व्याप्तमना अर्थात् सर्वज्ञ है। (यहाँ 'विमना' शब्दका अर्थ 'दीनमना' नहीं, 'सर्वात्मकमना' है।) उसकी महत्ता सर्वोपरि है। वही पाप-पुण्यरूप कर्मका फलदाता धाता है और साथ ही साथ विधाता भी।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् वह जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है । वही परिच्छेदरहित परमा संदृक् है अर्थात् परिच्छेदरहित चिन्मात्र है । अभिप्राय यह कि वह परिणामी नहीं, विवर्त्ती है । विषयप्रकाशक सप्तर्षि इन्द्रियोंके इष्ट स्वरूप उसीमें आनन्दित होते हैं । वह इन सात ऋषिरूप इन्द्रियोंसे परे अतीन्द्रिय है । तत्त्ववेत्ता उसीको अद्वितीय कहते हैं ।

योनः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्ना भुवना यन्त्यन्या ।।

वही विश्वकर्मा हमारा पालक और उत्पादक है । वही सबका विधाता स्रष्टा और रक्षक भी है । वही हमारे धाम और सम्पूर्ण भुवनोंका ज्ञाता भी है । वही अग्नि, वायु आदि देवताओंका निर्माण करता और नाम रखता है तथा उन-उन पदोंपर स्थापित करता है । वह एक ही है । इसका दूसरा अर्थ यह है कि वह एक ही अग्नि, वायु आदि देवताओंका नाम धारण करके प्रकट होता है । संसारके सभी प्राणी उसके विषयमें प्रश्न करते हैं कि वह परमेश्वर कौन है ।

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ।।

जैसे स्तुति करनेवाले पुरुष अपने महान् स्तोत्रोंसे परमात्माकी आराधना करते हैं, वैसे ही पूर्वतन महर्षियोंने भी अपने सर्वस्व धनके द्वारा इसी परमात्माका भलीभाँति भजन किया है । इन ऋषियों, इन्द्रियों एवं प्राणियोंने चराचर लोकमें निश्चल रूपसे विराजमान परमात्माकी सम्यक् उपासना, सेवा की है ।

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ।।

जो द्युलोक और इस पृथिवीसे परे है, जो देवता और असुरोंसे भी परे है, भला वह कौन-सा तत्त्व है; जिसे कारणवारिरूप जलने पहले-पहल अपने गर्भमें धारण किया । सब देवता उसी गर्भमें परमात्माका दर्शन करते हैं । (यह किसी ज्ञानी पुरुषका ही प्रश्न है, जिसका उत्तर अगले मन्त्रमें दिया जा रहा है) ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥

कारणवारिने सबसे पहले उसी विश्वकर्माको अपने गर्भमें धारण किया। उसी गर्भमें इन्द्रादि सब देवता सङ्गत रहते हैं। उस अजन्माकी नाभिमें एक अण्ड अर्पित था। इसी अण्डमें सम्पूर्ण प्राणी रहते हैं। इसका दूसरा अर्थ यह है कि अजन्मा परमात्मा स्वसृष्ट जलमें पहलेसे ही विराजमान रहता है और उस सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें बाँधनेवाले उदकमें एक ब्रह्माण्डकी स्थापना करता है।

[टिप्पणी : उद्गीथ स्वामीने जलको जगत्कारण लिखा है। 'देव' शब्दका अर्थ है विषयरूप खिलौनोंसे खेलनेवाले प्राण। 'सब' का अर्थ है लिङ्गशरीरके सत्रह निमित्त। वे सब कारणवारिमें दूध-पानीके समान एकमें मिले हुए थे।]

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

ओ मनुष्यो ! जिस विश्वकर्माने इन पदार्थों—प्राणियोंकी सृष्टि की है उसे तुम लोग सर्वथा नहीं जानते। जो तुम लोग ऐसा मानते हो कि 'मैं देवदत्त, मैं यज्ञदत्त' वह सब मिथ्या है। अह प्रत्ययगम्य जीव विश्वकर्मा परमेश्वरका स्वरूप नहीं है। वह इस जीवरूपसे अतिरिक्त वेदान्तवेद्य तत्त्व है। तुम उसे नहीं जान सकते; क्योंकि तुम नीहार (हिमानी, कुहासा) सदृश अज्ञानसे आच्छादित हो। जैसे नीहार अत्यन्त असत् नहीं है, दृष्टिका आवरक होनेके कारण भावरूप है और सर्वथा सत्य भी नहीं है; क्योंकि काष्ठ-पाषाणादिके साथ उसको सम्बद्ध नहीं कर सकते; इसी प्रकार अज्ञान भी अत्यन्त असत् नहीं है, तत्त्वावरक होनेके कारण भावरूप है : और केवल ज्ञानमात्रसे निवर्त्य होनेके कारण सत् भी नहीं है। ऐसे अज्ञानसे तुम लोग आच्छन्न हो रहे हो। न केवल आच्छन्न हो रहे हो, प्रत्युत 'मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ' इस झूठी कल्पना-जल्पनासे आवृत्त हो रहे हो। और भी। तुम प्राणों, इन्द्रियोंकी तृप्तिमें किसी प्रकार पेट भरनेमें लगे हुए हो। तुमने परमेश्वरतत्त्वका विचार नहीं किया। तुम केवल इसी लोकके भोगसे तृप्त नहीं हो। उक्थ अर्थात् प्रशंसा-वचनरूप अर्थवादोंके चक्करमें पड़कर कर्मकाण्डके वशवर्ती हो गये हो। यही कारण है कि तुम परमात्माको नहीं जान सकते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[टिप्पणी : उद्गीथ स्वामीने इस मन्त्रका अभिप्राय यह बताया है कि ज्ञानी और अज्ञानीमें महान् अन्तर है। अज्ञानी नीहार सदृश तमोरूप परमार्थ वस्तु-आच्छादक वेदार्थपरिज्ञानरूप अज्ञानसे आच्छादित है। वह दूसरेको पराजित करनेके लिए शुष्क तर्क-वितर्क करता है और इन्द्रियोंकी तृप्तिमें लगा हुआ है। वेदार्थके ज्ञाता पुरुष उक्थशासी होते हैं अर्थात् सम्पूर्ण विश्व-सृष्टिके मूल कारण परमात्माके स्वरूपका निरूपण करनेवाले होते हैं। उनकी सर्वत्र अप्रतिहत गति होती है।

वेङ्कटनाथने कहा है कि वह तुम्हारे अन्तर्हृदयमें ही है, परन्तु तुम उसे पहचानते नहीं हो। लौकिक-अलौकिक वचनोंके चक्करमें पड़कर तुम इन्द्रियों-की तृप्तिमें लग गये हो और उक्थशंसी अर्थात् आत्मश्लाघी होकर अपने परिच्छिन्न अहंकी महिमा गाते फिरते हो।]

●

भक्ति और मुक्ति

एक सज्जन किसी भद्र महिलाको देखकर उससे प्रश्न करते हैं—तुम कौन हो ?

महिला : मुझ दुःखिनीसे यह प्रश्न क्यों कर रहे हो ?

सज्जन : कल्याणि ! तुम इतनी उदास, निराश, निर्विण्ण क्यों हो ?

महिला : अच्छा ! तो मैं मुक्ति हूँ।

सज्जन : फिर तो धन्य हो तुम। परम पुरुषार्थरूपा हो। तुमको भला कौन नहीं चाहता ?

महिला : नहीं, नहीं—श्रीकृष्ण प्रेमी भक्त दूरस्थ भक्तका भी सादर भजन करते हैं, परन्तु मैं उनके चरणोंमें जाकर प्रार्थना करती हूँ, तब भी मुझे अपनी आँखके एक कोनेसे भी मुझे नहीं देखते हैं।'

का त्वं ? 'पृच्छसि दुःखिनीं किमिति मां' कस्मादयं ते शुभे !
निर्वेदो ? 'ननु मुक्तिरस्मि' तदहो सर्वोत्तमा त्वं 'न हि !
दूरस्थामपि सादरोऽनुभजते भक्तिं मुकुन्दप्रियो
मोपेत्यार्थनकारिणीमपि दृशः कोणेन मां वीक्षते ॥' ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीहिताद्वैत : एक विवेचन

अनन्त श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज

• ★ •

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी जिसके स्पर्शसे विवश होकर अपने-आपको भूल जाते हैं, वह मधुर वैवश्य ही प्रेमतत्त्व है। यहाँ विवशता-का अर्थ निर्बलता या मजबूरी नहीं है, मधुरताके पयोनिधिमें आत्म-निमज्जन है। यह मूकास्वादन अर्थात् गूंगेके गुड़के समान अनिर्वचनीय और एकमात्र अनुभवसे ही संवेद्य है। प्रेम ही स्वतन्त्र है और पर-माराध्य भी। भगवान्‌की भगवत्ता भी प्रेमके ही आश्रित है। यदि प्रेम-को शक्तिरूप मानें तो शाक्त मतमें प्रवेश हो जायगा। प्रेमकी उत्पत्ति और विनाश अशक्य हैं।

जैसा कि कहा गया है—प्रेम अपने आविर्भावके समय धन, यौवन आदि छोटे-से-छोटे कारणकी भी अपेक्षा नहीं रखता, जान-बूझकर अपराध करनेपर भी क्षीण नहीं होता। विनयसे उसकी वृद्धि नहीं होती। वह अपने स्वाद अमृतत्वादि गुणसे पीयूषको भी पराजित कर देता है। वह त्रिलोकीके दुःखको तत्काल मिटा देता है। ऐसे गुरु गम्भीरको वाणीका विषय बनाकर मैं तिरस्कृत क्यों करूँ ?[1]

प्रेमके मधुर स्पर्शसे परमेश्वर भी अपनी सर्वज्ञता भूलकर श्रीराधाको ही जानते हैं। उनकी सर्वज्ञता संकुचित हो जाती है। जीव भी प्रेम-संस्पर्शसे अपनी अल्पज्ञताका विस्मरण कर बैठता है। अब यह विचार करना है कि प्रेम भगवान्‌से अभिन्न है, उनका गुण है, या उनकी स्वरूप-शक्ति है तो यह भगवान्‌का उसके परवश होना कैसा है ? वस्तुतः स्वतन्त्र कौन है, भगवान् अथवा

---

१. आविर्भावदिने न येन गणितो हेतुस्तनीयानपि,
क्षीयेतापि न चापराधविधिना नत्या न यो वर्धते।
पीयूषप्रतिवादिनस्त्रिजगती दुःखद्रुहः साम्प्रतं,
प्रेम्णस्तस्य गुरोः किमद्य करवै वाङ्निष्ठतालाघवम् ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उनकी शक्ति ? यदि शक्ति स्वतन्त्र है तो शाक्त मतमें प्रवेश हो गया। यदि भगवान् स्वतन्त्र हैं तो प्रेमकी स्वाभाविक स्वतन्त्रता बाधित हो जायगी। ऐसी अवस्थामें भगवान्‌की प्रेम-परवशता भी केवल कथनमात्र रह जायगी। इसीसे यह स्वीकार करना पड़ता है कि प्रेम ही परमाराध्य है और उसके बहुत-से गुणोंमेंसे भगवत्ता भी एक गुण है। यही कारण है कि भगवत्ता सर्वथा प्रेमके अधीन ही है। अब यह प्रश्न उठता है कि प्रेम तो एक विशेष प्रकारका सम्बन्ध है। वह जिसके हृदयमें रहता है, वह उसका आश्रय है और जिसके प्रति होता है, वह उसका विषय है; इस प्रकार सापेक्ष है। ऐसी स्थितिमें प्रेम अद्वैत कैसे हो सकता है ? ठीक है, प्रेम, प्रेमी और प्रियतम दोनोंकी अपेक्षा रहनेपर भी दोनोंको एक कर देता है। साथ ही वह एकता गौण नहीं है; किन्तु सहज सत्यस्वरूप है। नित्य-सम्बन्धात्मक होनेसे वह एकता भी नित्य ही सद्वितीय और अद्वितीय है। यही प्रश्नका उत्तर है।

सच बात तो यह है कि प्रमेय वस्तु प्रमाणके अधीन होती है। प्रमाण-मूर्धन्य श्रुतिप्रमाणसे यह सिद्ध होता है कि सद्वस्तु 'एकमेवाद्वितीयम्' है। अर्थात् वह सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित है। श्रुतिने उसीको 'रसो वै सः' कहकर रसस्वरूप बतलाया है। इससे भगवान् और प्रेमका अभेद ही सिद्ध होता है। इस विषयमें भी यह ज्ञातव्य है कि भेद और अभेदका परस्पर विरोध होनेके कारण एक ही वस्तुमें समानसत्ताक भेदाभेदका होना सम्भव नहीं है; इसलिए औपाधिक अथवा स्वाभाविक भेदाभेदका प्रतिपादन ही युक्तियुक्त है।

किसी-किसीका कहना है कि श्वेताश्वतर उपनिषद्‌में जो भोक्ता, भोग्य और प्रेरिताका वर्णन है, वह हिततत्त्वका ही वर्णन है। प्रेमका आश्रय भोक्ता है। प्रेमका विषय भोग्य है और दोनोंका परस्पर रतिरूप प्रेम ही प्रेरिता है। वही दोनोंके भीतर और बाहर रहकर पोषक एवं नियामक है। प्रेमका स्वभाव ही है दोको एक बना देना। इसीसे भोक्ता और भोग्य दोनों एक-दूसरेके आत्मा हैं और परस्पर एक-दूसरेमें निमज्जनके लिए उन्मुख रहते हैं। यद्यपि यह सब अद्वितीय-ब्रह्मात्मक ही है तथापि प्रेरक प्रेम अव्याहत प्रेम-रसास्वादनके लिए भोक्ता-भोग्यके अपने-अपने स्वरूपको स्थिर कर देता है। यदि भोक्ता-भोग्यके—राधा-कृष्णके स्वरूपमें स्थिरता न हो तो प्रेमके स्वरूपकी स्थिति ही सम्भव नहीं होगी।

वह प्रेमतत्त्व ईश्वरके समान प्रेरक नहीं है; किन्तु सहचरी और दासीके समान दोनोंको प्रेरित करता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। क्योंकि प्रेम भगवत्स्वरूप है, इसलिए भोक्ता, भोग्य, प्रेरक सभी भगवदभिन्नस्वभाव हैं। यही कारण है कि सबके सब रसाश्रय, रसविषय एवं रसरूप हैं। रति भोक्ता-भोग्य रूप अपने कारणके आश्रयसे रहती है और भोक्ता-भोग्य रतिके आश्रित रहते हैं। रसिकोंके भजनरसकी सिद्धिके लिए नित्य लीलामय प्रेम ही श्रीनन्दनन्दन, वृषभानुनन्दिनी, सहचरीगण और श्रीवृन्दावनके रूपमें व्यक्त होता है। नन्दनन्दन भोक्ता हैं, प्रेयसी श्रीवृषभानुनन्दिनी भोग्या हैं, सहचरी और वृन्दावन प्रेरक प्रेमस्वरूप हैं। वही प्रेम लीलारसात्मक होनेके कारण लोक और वेदमें रसरूपसे प्रसिद्ध है। 'रसो वै सः' इस श्रुतिमें प्रेमको ही रसरूप कहा गया है। वह रसरूप होनेपर भी नित्यनूतन रसोपलब्धिसे ही आनन्दी होता है, क्योंकि श्रुतिका अगला भाग है—'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति'। यद्यपि लौकिक प्रेम भी अपने कारणके आश्रयसे ही अभिव्यक्त होता है तथापि लौकिक कारणके विकारी होनेसे उससे निष्पन्न होनेवाला प्रेमस्वरूप भी विकारी होता है। इसीसे निर्विकार निखिल - दिव्य - सद्गुणगणालङ्कृत भगवान्‌को ही प्रेमका आश्रय स्वीकार करके रसिकजन अत्यन्त शुद्ध प्रेमका अपरोक्ष साक्षात्कार करते हैं।

अब एक प्रश्न यह है कि भगवान्‌में परम माधुर्यके साथ ही साथ परमैश्वर्य भी नित्य निवास करता है; क्योंकि वह भी भगवान्‌के अतिरिक्त और कहीं नहीं रह सकता। ऐसी स्थितिमें अवश्यम्भावी सहज प्रेमपारवश्यमय माधुर्यके साथ उसका सामञ्जस्य सम्भव नहीं है। इसी अभिप्रायसे रसिकजन माधुर्याधिष्ठात्री (श्रीराधारानी)के महासाम्राज्य (श्रीवृन्दावन)से ऐश्वर्याधिष्ठात्री महाशक्तिको बाहर ही रखनेका प्रयत्न करते है। यही कारण है कि वृन्दावनसे यमुनाके दूसरे पार बिल्ववनमें महालक्ष्मीका निवास माना गया है। श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है कि जिनके कृपाकटाक्षकी प्राप्तिके लिए भगवदाश्रित ब्रह्मादि भी दीर्घकालतक तपस्या करते हैं, वही लक्ष्मी अपने निवासस्थल अरविन्दवनको छोड़कर अत्यन्त प्रेमसे श्रीकृष्णचरणारविन्दमकरन्दका सेवन करती हैं। इधर श्रीवृन्दावनमें पर्यंकशायिनी श्रीराधारानीके चरणकमलका प्रेम-संवाहन परमवशी श्रीकृष्ण करते हैं। जैसा कि कहा गया है—

नागरीशिरोमणि श्रीराधारानी सुकोमल शय्यापर आनन्दसे शयन कर रही हैं। नागरवर प्रियतम श्रीकृष्ण उनके चरणारविन्दको अपने करकमलोंमें लेकर बड़े आनन्दसे हृदय, ललाट और नेत्रोंमें स्पर्श कराते हैं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

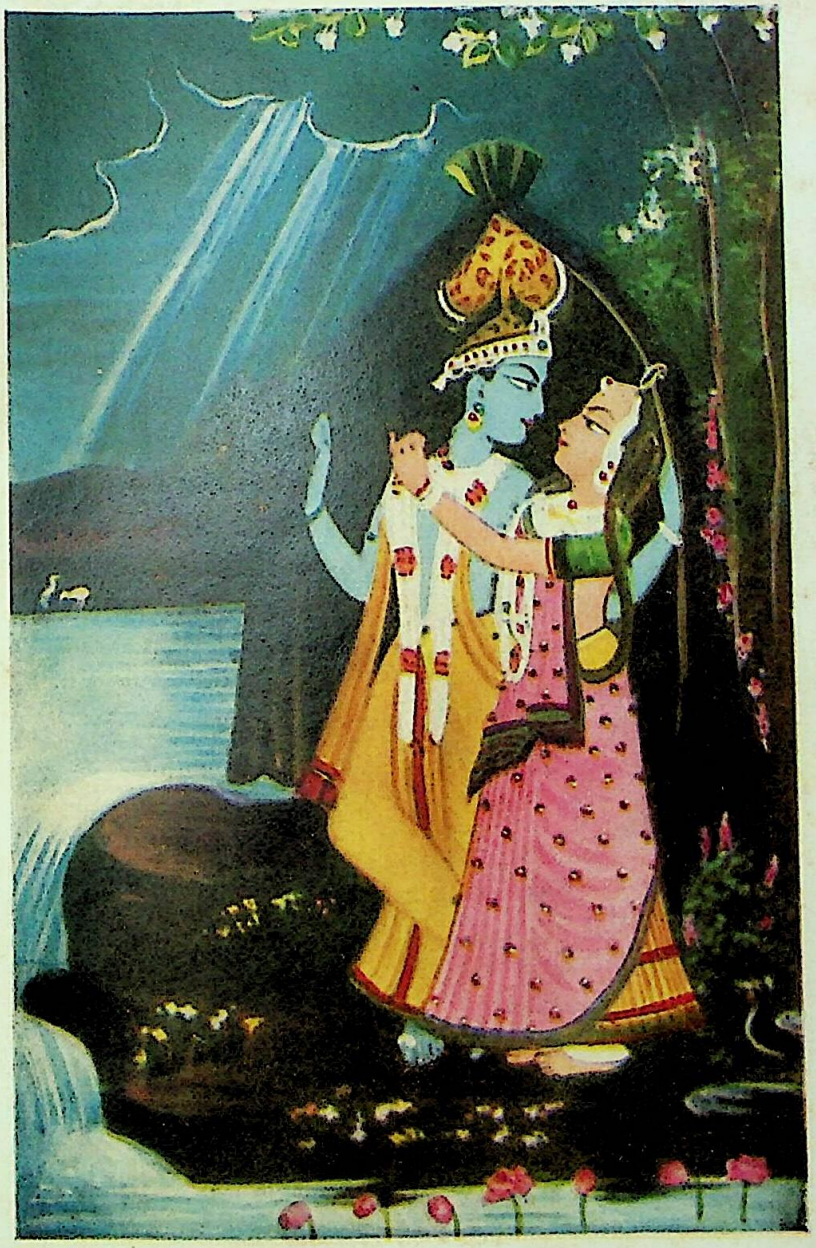

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और अपने सौभाग्यके ध्यानमें दीर्घ कालतक मग्न हो जाते हैं। हृदयेश्वरी वृषभानुकिशोरी परमानन्दस्वरूप माधवकी यह परम प्रीति देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे कृपामहार्णवमें मग्न हो जाती हैं और उन्हें भुजपाशमें बाँधकर आलिङ्गन देती हैं। उनके हृदयमें यह भाव है कि मेरे प्यारेको जो-जो रुचता है, वही मुझे प्रिय है। जो-जो मेरा प्रिय है, वही-वही प्रियतम करते हैं। जैसे मुझे अपने प्यारेकी आँखोंमें निवास करना रुचता है, वैसे ही प्यारे भी मेरे नेत्रोंके तारे बन जाना चाहते हैं—इत्यादि।[1]

संभोग-शृङ्गारमें दोनोंकी एकता ही अन्तिम सत्य है।

किसी-किसीका कहना है कि दिव्य दम्पतिकी एकता स्वाभाविक एवं नित्यसिद्ध है; तथापि आस्वादनार्थ द्वित्वकी अपेक्षा है। उनके नित्यसिद्ध प्रेमकी ही यह विशेषता है कि दोनोंकी एकता दुर्लभ नहीं है; परन्तु सहज एकताको छोड़कर उनका दो होना ही दुर्लभ है। ऐसा माननेपर भी उन रसिकोंने पूर्वरागादिका वर्णन तो किया ही है।

प्रेमसे देहेन्द्रियादिके ताप शान्त होते हैं, प्यास बढ़ती है, चित्त लुट जाता है, मन मृदु हो जाता है, दोनोंके हृदयमें प्रेम ही प्रेम विलास करता है और दम्पतिको विलास देता है। वही रसिकोंके हृदयमें रसानुभूतिका हेतु बनता है।

हिताद्वैती प्रेम और नियम दोनोंका निरूपण करते हैं। प्रेमकी आकृति और परिणामको नियम कहते हैं। रसके आविर्भावके साथ ही जो-जो क्रिया, चेष्टा एवं भाव अभिव्यक्त होते हैं, उन्हें ही नियम कहते हैं। प्रेमतत्त्व एकरस होता है। नियमोंके आविर्भाव-तिरोभाव होते हैं। वे लुका-छिपीके खेल खेलते हैं, जैसे सुवर्णके एकरस रहनेपर भी उसके परिणामभूत कड़े, कंगन, किरीट आदि। जैसे कुण्डल,

---

१. पर्यङ्के सुशयानाया नागर्या नागरः प्रियः।
चरणाब्जं करे धृत्वा हृदि भाले दृशोर्मुदा॥
स्पर्शयित्वा चिरं दध्यौ महाभाग्यं हि माधवः।
प्रेयसः परमां प्रीतिं दृष्ट्वा प्रीता हृदीश्वरी॥
कृपामहार्णवे मग्ना भुजाभ्यां परिषस्वजे।
यद्यद्धि रोचते तस्मै प्रेयसे तद्धि मे प्रियम्॥
मम यद् यत् प्रियतमं प्रियस्तत्तत् करोति हि।
प्रेयसस्तु दृशोर्वासो यथा मह्यं प्ररोचते॥
प्रेयान् सदा मम दृशोस्तारो भवितुमिच्छति।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कंगन आदि सुवर्णसे नियन्त्रित ही रहते हैं, वैसे ही नियमरूप चेष्टाएँ भी रससे नियन्त्रित ही रहती हैं। रसके विना उनका कोई स्वरूप नहीं है।

प्रेम अनादि और अनन्त है। वह नित्य तथा एकरस है, मादक और स्निग्ध है। नियम भावरूप होनेपर भी सादि और सान्त हैं। जैसे वस्त्रकी विशेषता उसके लाल रंगसे होती है, वैसे ही प्रेमकी विशेषता उसके नियमोंसे होती है। जैसे किसी पात्रमें विशिष्ट पच्चीकारी की हुई हो तो वह पात्रकी विशेषता है, वैसे ही नियमान्वित प्रेमकी भी विशेषता है। नित्य प्रेमरसमें मुस्कान, बोलन, मान, विलास आदि प्रकट और गुप्त होते रहते हैं। ठीक इसी प्रकार प्रेमलक्षणा भक्तिमें भी श्रवण-कीर्तनादि रूप नवधा भक्ति भी नियमरूप ही है।

किसी-किसीका कहना है कि प्रेमका उदय होनेपर विधि-विधानसे युक्त क्रिया और उसके परिणामरूप नियम लुप्त हो जाते हैं; किन्तु प्रेम-नियत नियम तो उसके साथ ही अनुवृत्त होते रहते हैं। यही कारण है कि मदन अथवा काम भी मधुर प्रेमसे नियन्त्रित नियम ही है। इसी प्रेम-मन्मथके योगसे शृङ्गार रसकी निष्पत्ति होती है। दिव्य दम्पति राधा-माधवके प्रेम और काम दोनों ही नित्य नूतन तथा अप्राकृत हैं। आस्वादित होनेपर प्रेम ही रस हो जाता है। मदनकेलियोगके द्वारा ही उसका आस्वादन होता है।

जबतक श्रीवृषभानुकिशोरीकी पदनखमणि-चन्द्रिकाका हृदयमें उदय नहीं होता तबतक वृन्दावन-भूमिमें चित्त नहीं रमता और जबतक वृन्दावननिष्ठा नहीं होती तबतक राधारानीकी करुणा भी उदय नहीं होती। उनकी रसमयी जडिमा ही वृन्दावनके रूपमें प्रकट होती है, उनका चैतन्य ही सहचरियोंके रूपमें प्रकट होता है। राधारानीके हृदयमें सर्वदा ही प्रेमरसका जाड्य व्याप्त रहता है। उसीपर चिन्मय प्रेम-विलास प्रकाशित होते हैं। प्रेमकी घनीभूत अवस्थाका नाम जडिमा है। घन प्रेम ही जडवत् प्रतीत होता है। श्रीवृन्दावनधाम ऐसा ही घन प्रेम-मय है। उसीपर प्रेमक्रीडा विलास करती हैं। अभिप्राय यह है कि प्रेमकी जडता वृन्दावन है, चपलता सखियाँ हैं; क्योंकि दोनों ही प्रेममय हैं।

सच तो यह है कि वृन्दावन भी चिन्मय ही है। इसीसे वृन्दावनकी सङ्कीर्ण कुञ्जवीथियोंमें—सांकरी खोरमें भी विहार करते समय युगलके वस्त्र नहीं फँसते और न तो छुए जाते। वहाँके कुञ्ज भी चेतन होनेके कारण आवश्यकतानुसार सँकरे-चौड़े हो जाते हैं। जब दिव्य दम्पति प्रेमोन्माद-के पराधीन और विह्वल हो जाते हैं,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन्हें अपनी देह आदिका भी अनुसन्धान नहीं रहता और वे कभी हिलमिलकर तथा कभी आगे-पीछे होकर चलते हैं, तब वृन्दावन ही उन्हें पथप्रदर्शन करता है। जिन परम कोमल लहलही डहडही लताओंमें वे विहार करते हैं, वे भी प्रेमविवश होकर प्रहृष्ट, उन्मत्त और मूर्च्छित हो जाती हैं। सहज प्रेमोन्मेषसे युक्त दिव्य नयनोंसे ही भूतलस्थित वृन्दावनका और उसके खग-मृग-लताप्रतानका चित् प्रेममय रूपमें दर्शन होता है। वृन्दावनकी कल्पद्रुमतिरस्कारिणी प्रेमामृतसिक्त लता, द्रुमके दर्शनमात्रसे ही कामनाएँ विलीन हो जाती हैं।

वृन्दावन रसमयी लीलाओंका आधार है, इसलिए रसोपासना भी उसीके नितान्त आश्रित है। रसोपासनाका धारण करनेके कारण वृन्दावन धर्मरूप भी है। वृन्दावन धाममें प्रेमामृतसिन्धु वेलाका अतिक्रमण कर रहा है। उसका धारण करनेके कारण वन भी धर्म ही है। धर्मकी दोनों व्युत्पत्तियाँ हैं—धारण करे अथवा धारण किया जाय। पहला साधनात्मक है और दूसरा साध्यात्मक। प्रेमभक्ति अथवा वृन्दावनका साधन नवधा भक्ति है। अतएव वृन्दावन प्रेमका सहज वैभव है। वह श्रीराधारानीके चरणारविन्दाश्रित होनेपर भी उनको धारण करता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि धर्म और धर्मी अन्योन्याश्रित हैं।

यद्यपि रस सब धर्मोंसे परे है तथापि रसका भी एक परम सूक्ष्म धर्म होता है। रस उसी धर्मके द्वारा अपने सकल विलासोंको धारण करता है। रसके धर्म-धर्मिभावका आश्रय लेकर ही रसोपासना निष्पन्न होती है। रसके सहज धर्म और उसके धर्मीसे रसकी शुद्धतम स्थिति व्यक्त होती है। प्रेमात्मक रसका सहज धर्म है वृन्दावन। राधा-माधव उसके धर्मी हैं। सहज धर्म-धर्मीके योगसे शुद्ध रसोपासना सम्पन्न होती है।

कोई-कोई रसिक इस प्रकार निरूपण करते हैं—वृन्दावन राजधानी है। रसाब्धिचन्द्र श्रीकृष्ण राजा हैं। व्रजनवतरुणीकदम्बमुकुटमणि वृषभानुनन्दिनी महारानी हैं। वैकुण्ठादि दिव्य लोक उसके विशेष स्थान हैं। स्वयं मेघ उद्यानका सेचन करते हैं। चारों मुक्तियाँ पानी भरती हैं। सूर्यचन्द्रमा पहरेदार हैं। मरुद्गण सेवक हैं। लक्ष्मी सेविका हैं। निगमागम चारण हैं। साक्षात् धर्म सभारक्षक है। सनकादि सूचक हैं। सत्त्व द्वारपाल है। काल अभियुक्त है। कर्म दण्डधर हैं। कामकेलिसुख ध्वज है। सुवर्ण और मरकतकी भूमि है। कुसुमित वनावली प्रासाद हैं। रसिक भक्त अन्तरङ्ग परिचारिणी हैं। प्रत्येक कुंजमें प्रेममय शय्या है और प्रेमायन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। कुञ्ज-कुञ्जमें शृङ्गार-सामग्री संगृहीत है। दिव्य पट्टाम्बर हैं। वाद्य, नृत्य, गानसे समलङ्कृत मणिमय रासमण्डल हैं। दिव्य सहचरी-मण्डलके मध्यमें विलास-परायण दिव्य दम्पतिके नित्य प्रेम-सम्भोग वहीं होते हैं।

प्रेमरति ही वृन्दावनरति है। नित्यनूतन प्रेम ही वृन्दावन है। इसीमें श्रीराधामाधव रसिकरूपसे विराजते हैं। उनकी उपासिका सखियाँ हैं। यहीं प्रीतिलता अंकुरित एवं पल्लवित होती है। उसमें दो पुष्प खिलते हैं प्रेम और सौन्दर्य। वे अनुरागरङ्गसे रञ्जित और परम सुन्दर होते हैं। लतासक्त रसिक ही सहज प्रेमविलासका आस्वादन करते हैं। वृन्दावनमें भी गोष्ठवृन्दावन और क्रीडावृन्दावन दोनोंसे विलक्षण है राधाविहारवृन्दावन। स्वसुख-वासनासे रहित शुद्धतम परम समृद्ध एवं पूर्ण रतिका वह सहज रूप है। वहीं श्यामाश्यामकी शृङ्गारक्रीडा प्रकाशित होती रहती है। जैसे रति और रसका स्वाभाविक सम्बन्ध है, वैसे ही राधाविहारवृन्दावनके साथ श्यामा-श्यामका सम्बन्ध है। इसी अनादि अनन्त असीम दिव्य वाम कामसागरमें नित्य शुद्ध परमानन्द-मय परम कोमल परम सुन्दर गौर-श्याम दिव्य दम्पति सर्वदा विहार करते रहते हैं। उनके विहारका आधार यह वन है। इसलिए सत्पुरुष उसका सदा ध्यान करते हैं। वास्तवमें यह तत्त्वका ही सुखविलसित रूप है। दिव्य दम्पतिकी किशोरता सर्वाश्चर्य-मयी है। उनका जीवन सर्वाङ्गीण संश्लेषसे सर्वदा युक्त है। प्रमदायुक्त पुरुषका ही नाम शृंगार है।

श्रीराधामाधव प्रेमसौन्दर्यमय हैं। वे दिव्य अप्राकृत शृंगार रसमें आसक्त हैं, दिव्योज्ज्वलरसपरायण हैं। प्रेम ही उनका प्रेरक है। प्रेम-रसका ही आवेश है। वे प्रेमभोग-परायण रहनेपर भी प्रेमकी प्याससे व्याकुल रहते हैं।

सखियाँ भी सर्वदा ही विवाह कौतुकके आवेशमें रहती हैं और प्रतिदिन विवाहोत्सव रचती हैं। वे प्रेमावेशसे वर-वधूका नाना शृङ्गार-परिवेश बनाती हैं। कमलके मुकुट-भूषणसे उनका कन्दर्पकोटि लावण्य और भी जगमगा उठता है। अगणित रतिकन्दर्प उनके महामोहन रूपामृत का पान करके अपने-आपको निछावर कर देते हैं। विवाह-मण्डपमें छविके चँदोवे, हितके बन्दनवार और तोरण। गान और नृत्य करते हुए पशु-पक्षी, सखियाँ निकुञ्जप्राङ्गणमें मुक्ता-माणिक्य आदिकी मङ्गल रचना करती हैं। शय्याकी वेदीपर बैठाकर देवी-पूजा करवाती हैं। परस्परा-वलोकनके द्वारा दृगञ्चल-समञ्जनकी गाँठ बाँधती हैं। दोनोंके मनकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भ्रमण-भाँवर ही अग्नि-परिक्रमा है। प्रेमके कंगनका बन्धन है। वे अनेक कौतुक करके सौभाग्यवृद्धिका आशीष देती हैं।

वे दिव्य दम्पति नित्य विवाहोत्सव-सुखका भोग करते हैं। विवाहोचित वस्त्राभूषणसे अलङ्कृत होते हैं, नित्य नूतन वयःसुखका आस्वादन करते हैं एवं नित्य चन्द्रज्योत्स्नाभिराम रजनीका उपभोग करते हैं। कालिन्दीके लोकोत्तर कूलपर स्थल और जलपर भी कुसुमाकीर्ण अगणित योजन विस्तीर्ण रासमण्डलमें दिव्य दम्पति रासोत्सव करते हैं। मृदङ्गादि वाद्य, ताल, नृत्य एवं सङ्गीतकी धूम मच जाती है। प्रेमके आवेशसे भरपूर प्रेममग्न प्रेमपटालङ्कृत दोनों विविध प्रकारकी लास्यक्रीडा करते हैं। देवाधिदेव एवं महर्षिगण भी उस वंशीध्वनिसुधाधारा और नूपुररणित अमृतकणका पान करके बेसुध हो जाते हैं। वहाँ देश, काल, वस्तुकी मर्यादा नहीं है। सहज प्रेम ही युगलके रूपमें क्रीडा करता है। वहाँ न कोई पूजाका उपचार—कृत्रिम सामग्री है, न स्तुति है, न अपराध है और न तो आदर सम्भ्रम ही। वहाँ है अनिर्वचनीय लावण्य चमत्कृति। एकरस किशोरभाव। मोहन रूप। परमाश्चर्यमय चातुर्य, माधुर्यसे भरपूर केलिकलाविलासकी जगमगाती रश्मियाँ।

दोनों दोनोंकी प्रीतिसे परवश हैं। मर्यादा मिट चुकी है। उच्छृङ्खल शृङ्गारकेलिमें मग्न होकर स्वयं दिव्य चिन्मय रसका आस्वादन कर रहे हैं। ललित अंगोंकी चंचल भावभङ्गियोंको देखकर शृंगारकला भी लज्जित हो रही है। एकमात्र यही रसिकोंका उज्जीवन है। वे उसीके श्रवण, वर्णन, गान आदिके द्वारा गम्भीर रसको पूर्ण करते हैं।

कभी इसी क्रीडासुख-सिन्धुकी एक कणिकाका अवलोकन करके पंचबाण महाअनंग भी मोहित हो जाता है। उसके पंच बाण उसीको आहत करके जर्जर कर देते हैं। वह अपने ही बाणसे पीड़ित होकर विवश, बेहोश और लज्जित हो जाता है, उसका मुँह लटक जाता है। दिव्य दम्पतिके शृङ्गारलेशका आस्वादन करके कामकी वृत्तियाँ मोहित हो जाती हैं। राधामाधवका काम अत्यन्त शुद्ध प्रेमात्मक है। इसीसे वह नित्य नूतन है। शृङ्गाररसका आस्वादन करनेके लिए ही काम प्रेमका अवान्तर भेद बन जाता है। राधामाधव, उनकी क्रीडा, उपकरण और अनुभाव—सभी कुछ वहाँ प्रेमामृतमय है। दम्पति प्रेममूर्ति हैं, शय्या प्रेमपुष्पमयी है, प्रेममयी क्रीड़ा है, प्रेमकी दृष्टि है, प्रेमकी मुस्कान है, प्रेमका राग है और प्रेमकेलिकलाका अनुगमन है। लौकिक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काममें किंचित् भेदकी अपेक्षा है। इसीसे वह निकटतम सम्बन्धमें ही उदित होता है। राधामाधव एकरस शुद्ध प्रेमविलासमय हैं। उनमें लौकिक कामकी गन्ध भी नहीं है।

लोकव्यवहारमें कामसे भिन्न-भिन्न दो व्यक्तियोंकी एकता होती है, परन्तु यहाँ तो सर्वथा एक ही ज्योति कामके द्वारा युगलरूप बनायी जाती है। लोकमें भोगके बादमें विरसता होती है; परन्तु यहाँ उत्तरोत्तर रसकी विशेषता ही देखी जाती है। प्रेमानुरागके रंगमें रँगे हुए श्यामसुन्दर अपनी प्रेयसीके मृदुल-मृदुल अंगोंको मानस करकमलोंसे भी स्पर्श करनेमें संकोच करते हैं। प्रियतमके प्रेमसे सन्तप्त प्रेयसीके ऊपर वे अपने प्राणोंका छत्र लगाकर छाया करते हैं; क्योंकि वे अतिशय सुकुमार हैं। प्रेयसीकी मुस्कान ही प्रियतमके लिए सब विलासोंका सार है। वे उसके अवलोकन मात्रसे ही सब सुखोंको भूल जाते हैं। ऐसी कोई विलक्षण शक्ति है, जिसे दूरसे देखकर ही वे अपने-आपको निछावर कर देते हैं। प्रेमात्मक कामका यह कोई विलक्षण अनुभाव है, जिससे वे प्रतिक्षण प्रेयसीके अंगोंका आलिङ्गन करते हुए भी मानसिक करकमलोंसे भी स्पर्श करनेमें डरते हैं। यही वह स्थल है, जहाँ प्रेम और काम दोनों अपनी परम पवित्र और अत्यन्त उत्कृष्ट कक्षाको अलङ्कृत करते हैं।

प्रेममय कामके अनुभवमें लौकिक काम बाधक है। वह दिव्य दम्पतिके प्रेमानुभावको अपने अनुभाव सदृश समझकर भ्रममें पड़ जाता है। इस प्रेममें सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि सभी क्रियाएँ लौकिक कामके समान होती हैं, तब भी कामका स्पर्श नहीं होता। जैसा कि कहा गया है, 'क्रिया तो सब वही है; परन्तु काम नहीं है।' इस रसमें स्वयं प्रेम और सौन्दर्य प्रेमलीलाका रसास्वादन करनेके लिए दिव्य वपु धारण करते हैं। अहो! यह प्रेमलीला जगत्पावनी और लोकोत्तर है।

(क्रमशः)

●

नमो नमस्ते !

जय श्रीमद्वृन्दावनमदन नन्दात्मज विभो
प्रियाभीरीवृन्दारिक निखिलवृन्दारकमणे।
चिदानन्दस्यन्दाधिक पदरविन्दासव नमो
नमस्ते गोविन्दाखिलभुवनकन्दाय महते॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वात्सल्य

बालमुकुन्द यशोदा मैयाके निकट ही माँकी गोदमें आरोहण करने के लिए घुटनोंके बल चल रहे हैं। यशोदा मैया यह सोचकर कि मेरे नन्हें-मुन्ने लालको चलनेका अभ्यास हो जाय, सामनेकी ओर न आकर पीछेकी ओर लौटनेका उपक्रम करती हैं और कृष्ण-शिशुकी उपेक्षा कर देती हैं। माँकी गोद न पाकर वे रुआँसे हो जाते हैं। मुँह कुम्हला जाता है। यशोदा मैया लौटकर झट गले लगा लेती हैं और 'नहीं, नहीं, नहीं!' कहकर बालकको आश्वासन देती हैं—

आराज्जानुकरोपसर्पणपरो जातस्मितं सञ्चर-
न्नङ्कारोहमनाप्नुवन् रुरुदिषाविम्लान - चन्द्राननः।
अभ्यासार्थमुपेक्षितोऽपसरणप्रक्रान्तया सत्वरं
कण्ठेकृत्य यशोदया न न न नेत्याश्वासि बालो हरिः॥

इसमें ममता स्थायिभाव है और वह केवल एक कृष्णमें ही है। आलम्बन विभाव हैं श्रीकृष्ण। उद्दीपन है घुटनोंके बल चलना। अनुभाव है गले लगाना। व्यभिचारी है हर्ष। यह रस परोक्षरूपसे यशोदाजीमें है और प्रत्यक्षरूपसे दर्शकमें।

●

शुभ आशासे भरी प्रतीक्षा हो प्रियतम की।
अन्याश्रयका त्याग भक्ति हो अन्तरतम की॥
काम, राम, आराम न मनमें कभी चाहना।
चाहे कुछ हो जाय बोलना कभी आहना॥

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चटोरे !

स्थान वृन्दावन। एक रसिक शिरोमणि सन्त। तीसरे पहर गाँवसे रूखी रोटी भिक्षा माँगकर ले आये। अपने प्राणप्रेष्ठ मदन-मोहन महाप्रभुको भोग लगाकर बोले—'प्रभु ! आरोगिये।' उनके आराध्य भगवद्विग्रह उनसे बात किया करते थे। बोले—'महात्माजी ! यह रूखी रोटी मेरे मुँहमें है, नेक नमक तो दे दीजिये।' महात्माजी बोले—'अरे ! तुम इतने चटोरे हो गये ! मेरे पास नमक नहीं है, कहाँसे लाऊँ ? स्वामी ! मुझे क्यों छलते हो ? क्या तुम्हें नमकके स्वादकी अपेक्षा है। तुम मेरी वासनामें बैठकर उसकी पूर्तिके लिए बोल रहे हो। ऐसा करोगे तो आज नमक, कल शक्कर, परसों घी चाहिए। मैं कहाँ-कहाँसे लाऊँगा ? मुझपर अनुग्रह करो।'

बात आयी गयी। वे भजन-ध्यानमें मग्न हो गये।

कुछ समय बाद उनके निवास-स्थानके ठीक सामने यमुनाजीकी अगाध धारामें एक व्यापारीकी बहुत बड़ी नौका डूबने लगी। उसने कहा—'हमारे प्राण बच जायँ तो नौकाकी सारी सामग्री दान कर दें।' नौका बच गयी और उसका सारा माल महात्माजीकी कुटियाके आस-पास उतार दिया गया। नमक लो, शक्कर लो ! मुहरें लो, कपड़े लो।

महात्माने निश्चय किया, 'अब हमारा उपास्यदेव भोग-विलासके साथ रहेगा। रहो ! तुम्हारी मौज !' ऐसा कहकर उन्होंने अपनी आराध्य-मूर्ति एक दूसरे साधुको सौंप दी और स्वयं वहाँसे दूर बीहड़ वनमें जाकर भजन करने लगे। यह सच है कि उस आराध्यमूर्तिके लिए एक विशाल मन्दिर बना। और उनकी महाराजोचित सेवा-पूजा होने लगी। परन्तु उस महात्माने अपने बात करनेवाले परम प्रियतम आराध्य-विग्रहको छोड़ दिया; परन्तु अपने त्याग-वैराग्यको नहीं छोड़ा। क्या आप उस महात्मासे परिचित हैं ? वे हैं सुख्यात नाम श्री श्री सनातन गोस्वामी।

लोकप्रवाद है कि उन्होंने नमक माँगनेपर अपने इष्टदेव नन्हें-मुन्ने बालकृष्णको चपत लगा दी।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शकटभञ्जन लीला

अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

भगवान्‌के समग्र ऐश्वर्य, धर्म आदि छः भगोंमें यश तृतीय है। शकटोद्धार-लीला यशके अन्तर्गत है। निर्दोष बालक इसमें प्रमाण हैं इसलिए यह भी प्रमाण प्रकरणके अन्तर्गत है। लीलाके दो अङ्ग हैं, प्रपञ्च-विस्मरण और भगवदासक्ति-उत्पादन। दूसरेकी सिद्धिके लिए विशेष प्रश्न किया गया है, ऐसा श्रीआचार्य वल्लभका मत है। श्रीजीवगोस्वामीका कथन है कि बाल-चरित्रके श्रवण-वर्णनसे ही सब साधनोंकी फलरूपा भगवद्रति प्राप्त हो जाती है, यह सुनकर और अपने हृदयमें रतिविशेषका अनुभव करके परमानन्दाब्धि-निमग्न राजा परीक्षित परम उत्सुकतासे भगवच्चरित्रमात्रका अभिनन्दन करनेके लिए प्रश्न करते हैं। श्रीधरस्वामीका अभिप्राय यह है कि बालचरित्रके आनन्दमें मग्न होकर राजा परीक्षित फिरसे वही पूछते हैं और सुने हुए अन्य चरित्रोंका अभिनन्दन भी करते हैं। शकटका उत्क्षेपण, तृणावर्तका अधःक्षेपण और मुखमें विश्वका प्रसारण—विशेष करके इन्हीं तीनों लीलाओंका वर्णन इस प्रसङ्गमें है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने कहा है—'पूतनाका स्तन पीनेमें होठोंका बल, शकटासुरके भञ्जनमें चरणोंका बल और तृणावर्तके वधमें हाथोंका बल प्रकट हुआ है। विश्वरूपदर्शनमें माताके स्नेहकी अधिकता प्रकट की गयी है।'

ब्रह्माण्डपुराणमें भगवान्‌का एक नाम है—'शकटासुरभञ्जनः'। पूतना प्रकट रूपमें आयी थी, शकटासुर गुप्तरूपमें आया। शकटभञ्जनलीलाका प्रतीकात्मक अर्थ है जड़वादका विध्वंस। तीन मासकी अवस्थामें श्रीकृष्णने करवट बदली। उसी दिन जन्मनक्षत्र भी था। बड़ा भारी उत्सव हुआ। ब्राह्मण, सम्बन्धी, गोपी, ग्वाल सब इकट्ठे हुए। वेदपाठ, सङ्गीत, वाद्यका कोलाहल। घरमें शिशु कृष्णको भी सुलानेकी जगह नहीं रही। परम्परागत वैदिक कर्म समाप्त हो जानेपर नन्दरानीने देखा कि बालककी आँखोंमें नींद है। उन्हें धीरेसे छकड़ेके नीचे बिछे हुए पलंगपर सुला दिया। श्याम शरीरपर झीना-झीना पीताम्बर ओढ़ा दिया। इस प्रसङ्गमें भगवान्‌की आँखमें निद्रा क्यों आयी, इसका भाव श्रीहरिसूरि बतलाते हैं :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिष्टाचार इतीदृगित्युपगतप्रश्नो जनो मामयं
स्नेहार्द्रं कुरुतेऽथवानुपधिकं प्रेमर्धिकामो मयि।
आस्ते इत्यपहाय कार्यमपरं पश्यामि तूष्णीं किमि-
त्यासीन्मीलितदृक् शयालुरिव तत्सत्यावगत्यै प्रभुः॥

...'जो लोग इस उत्सवमें आये हैं वे 'शिष्टाचार ही ऐसा है' यह समझकर मुझे स्नेहार्द्र कर रहे हैं अथवा सचमुच निश्छल प्रेमके वशीभूत होकर, सब काम-धन्धा छोड़कर मुझसे अपना प्रेम बढ़ाना चाहते हैं। इसी सत्यको समझनेके लिए श्रीकृष्णने चुपचाप अपनी आँखें बन्द कर लीं, मानो सो गये हों।'

एक दूसरी सूक्ति देखिये! निद्राने स्वयं विचार किया—'श्रीकृष्णके करवट बदलनेके इस माङ्गलिक उत्सवमें सभी गोपियाँ आयी हैं और इसका आनन्द ले रही हैं तो मैं ही इस सुखसे क्यों वञ्चित रहूँ?' सम्भव है यही सोचकर निद्रा श्रीकृष्णके नेत्रोंमें आयी हो।

श्रीनायकौत्थानिकमङ्गलेऽस्मिन् प्राप्ताः समग्रा अपि गोपवध्वः।
ग्राह्यं सुखं तन्न कथं मयेति निद्रा शनैरीशदृशं किमागात्॥

श्रीकृष्णलीलामें प्रायः सर्वत्र यह बात देखनेमें आती है कि जब भक्तकी दृष्टि भगवान्से हटकर किसी अन्यपर जाती है या स्वयं अपने-आपपर भी आती है तब कोई न कोई उपद्रव खड़ा हो जाता है। जैसे पूतनाके प्रसङ्गमें यशोदा मैयाकी दृष्टि कृष्ण शिशुसे हटकर उसके सौन्दर्यसे अभिभूत हो गयी थी। वह विरोधभावाक्रान्त राक्षसी थी। शकटासुरके प्रसङ्गमें अनुकूल-भावसम्पन्न समागत सम्बन्धी थे। उनपर दृष्टि जाना भी अनिष्टोत्पादक हुआ। रासलीलाके प्रसंगमें गोपियोंकी दृष्टि किसी अन्यपर नहीं गयी थी; किन्तु अपने-आपपर ही खिंच आयी थी। वहाँ तो अन्तर्धान ही हो गये। इसका अभिप्राय यह है कि श्रीकृष्ण सर्वदा अपने प्रेमीके नेत्रोंके तारे होकर ही रहना चाहते हैं। उन्हें नेत्रमें अन्यकी, अपने अहंकी एवं शून्यताकी भी उपस्थिति प्रिय नहीं है।

इस प्रसङ्गमें यशोदा माता श्रीकृष्णको छकड़ेके नीचे पलंगपर सुलाकर औरोंकी पूजामें संलग्न हो गयीं। यह बात श्रीकृष्णको पसन्द नहीं आयी। इसलिए श्रीकृष्णने एक दूसरी लीलाका विस्तार किया। वह है उत्थानलीला। श्रीहरिसूरिने इस प्रसङ्गमें 'शत्रुमनः' पदका प्रयोग करके श्लेषालंकारके द्वारा अपना भाव प्रकट किया है। शत्रु-मनका पहला अर्थ है शत्रुका मन। दूसरा अर्थ है शत्रुरूप अनस् = शत्रुम् + अनः। अनः=छकड़ा। विजयार्थी पुरुषको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शत्रुमन या शत्रुशकटका भेदन करनेके लिए उत्थानविधि करनी चाहिए, धावा बोल देना चाहिए। इसीसे भगवान्‌ने यह औत्थानिक लीला की।

श्रीकृष्णने देखा कि उत्सवसुखका अनुभव करके अब निद्रादेवी जा रही हैं। तब उन्होंने रोदनच्छलसे वसु अर्थात् धन या जलके द्वारा उसका सत्कार सम्पन्न करके विदाई दी। रोनेका भाव यह है कि मेरे लिए तो इनके घरमें भी जगह नहीं है। मैं छकड़ेके नीचे सो रहा हूँ और इनकी दृष्टि मेरी ओर नहीं है। ईश्वर हृदयमें नहीं, आलेमें बैठा दिया गया। मन्दिरसे बरामदेमें कर दिया गया। जीवोंकी इस मनःस्थितिसे दयापरवश भगवान् रोने लगे। उन्होंने यह विचार किया—'मेरे लिए ही उत्सव हो रहा है और मुझे निवेदन नहीं किया जा रहा है तो मुझे इससे प्रसन्नता कैसे होगी ?' भक्तोंकी भलाईका मार्ग दिखानेवाले प्रभुने यही शिक्षा देनेके लिए स्तन्यपयः-पानके लिए रोना प्रारम्भ कर दिया।

अनिवेद्य मां यदि कृतो मदुत्सवो न स तोषकृद्भवति मे त्विति प्रभुः।
भुवि बोधयन् स्वहितमार्गदर्शकः किमभूत्तदा स्तनजपानसस्पृहः॥

भगवान्‌ने यह विचार किया इस छकड़ेके साथ कैसे निपटना चाहिए ? इसके सत्कार-असत्कारमें तो शूद्र ही निपुण होता है। उन्होंने शूद्रस्थानीय चरणोंको सम्बोधित करके कहा—'अरे ओ चरणो ! मैं तुम्हारी पुत्री पृथ्वीकी रक्षाके लिए अवतीर्ण हुआ हूँ—'पद्भ्यां भूमी'। तुम्हें इसमें मेरी सहायता करनी चाहिए।' यह सोचकर भगवान्‌ने चरणप्रक्षेप किया।

विभाव्य शूद्रनैपुण्यमनसः सदसत्कृतौ।
युक्तं तत्राच्युतश्चक्रे तद्धेतुस्वाङ्घ्रियोजनम्॥
युष्मत्कन्यावनं कर्तुं मम साहाय्यवर्तनम्।
भवतोर्युक्तमित्यङ्घ्री सूचयँस्तावुदक्षिपत्॥

श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजका अभिमत है कि भगवान् परमानन्दरसस्वरूप हैं। उनसे ऊपर जड़ शकटका होना अनुचित है और उसके भी ऊपर किसी दूसरे रसका होना घी, दूध, दही, मक्खनका तो नितान्त अनुचित है। जड़-वादी जीवकी यही दशा है। उसके जीवनके अन्तरालमें भगवद्रस कहीं दब गया है। जड़ विषय और तद्विषयक रस उसके जीवनको अभिभूत कर चुके हैं। यही नन्हें-मुन्ने ब्रह्मशिशु चाहें तो ज़रा-सा पाँव फैलाकर उसको उलट सकते हैं। भगवत्सम्बन्ध होते ही वह जड़ भी चेतन और पूज्य हो जायगा।

यह शकट नहीं, शंकट है। यह शं अर्थात् कल्याणरूप प्रभुको भी संकटमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डालनेके लिए आया है। इसलिए भगवान्‌ने उसे अपने चरणसे मारा। श्रीमद्भागवतमें एक स्थानपर एक ही चरणसे मारनेका वर्णन है। 'पदा शकटोपवृत्तः'। इस स्थानपर दोनों चरणोंका वर्णन है। एक पदका अर्थ यह है कि इस निर्बलके सम्मुख समग्र बलके प्रदर्शनकी आवश्यकता नहीं है। दो चरणका अर्थ यह है कि हिरण्यगर्भ और ईश्वररूप दो पादोंके चिन्तन बिना भूत-भौतिकरूप तृतीय पादका निवारण नहीं हो सकता। ज्यौतिष शास्त्रमें यह प्रसिद्ध है कि जब शनैश्चर ग्रह रोहिणी नक्षत्रका भेदन करता है तब पृथ्वीपर वृष्टि होना बन्द हो जाता है। आसुरी पीड़ासे सत्पुरुषोंके नेत्र आँसू बरस रहे थे। भगवान्‌ने अपने शनैश्चर (धीरे-धीरे चलनेवाले) चरणोंसे रोहिणी (के) शकटका भेदन कर दिया जिससे सन्तोंकी अश्रुवर्षा बन्द हो गयी। न चरण नृसिंहके समान कठोर हुए, न त्रिविक्रमके समान बढ़े। नन्हें-नन्हें, मृदुल-मृदुल।

श्रीहरिसूरि कहते हैं कि यह एक रणनीति है। पहले अधःस्थिति स्वीकार कर ले। ततश्च रणयोगसे शत्रुको नीचा दिखावे। इसमें 'च' और 'रण' यह दो भाग 'चरण' शब्दके कर दिये। देखिये उनकी सूक्ति यह है—

स्वीकृत्याधःस्थितिं पूर्वं ततश्चरणयोगतः।
अधःपातं नयेच्छत्रुं क्षणादित्यकरोत्स्फुटम्॥

क्षुधार्त कृष्णने अपने चरणरणयोगसे शकटभञ्जन करके यह प्रकट किया कि सत्पुरुष दुःखोद्रेकसे भी कोई काम करता है तो उससे दुष्ट दमन ही होता है। जिसके नीचे भी भगवान् आ जाते हैं उसको योगीसे भी श्रेष्ठ स्थिति प्राप्त हो जाती है। जो दूसरेके अनिष्टका चिन्तन करता है उसकी दुर्गति स्वतःसिद्ध है। क्या आश्चर्य है कि जो शकट तुमसे भी ऊपर था वह आसुर-भाव—द्वेषसे आक्रान्त होनेके कारण रिपुमनोभङ्ग और स्वजनमनःसुख दोनोंकी उत्पत्ति एक ही क्रियासे हो गयी। एक बल दो फल। यहाँ भी मनके अन्दर अनस् छिपा हुआ है।

सबकी दृष्टि, जो इधर-उधर बिखर रही थी, निरुद्ध होकर श्रीकृष्णके साथ जुड़ गयी। संकटकी आशकासे उत्कट आसक्ति जाग्रत् हो गयी। प्रपञ्चविस्मरणपूर्वक श्रीकृष्णासक्तिकी उत्पत्ति ही तो लीलाका रस है।

सबकी घबराहट देखकर बालकोंने कहा—'इसीने रोते-रोते पाँवसे मारा है।' लोगोंने कहा—'यह है अबलालंकृत; इसमें ऐसा बल कहाँ ?' किसीको विश्वास नहीं हुआ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महात्मा और राजा

एक थे महात्मा विरक्त अवधूत ब्रह्मनिष्ठ। एक राजा उनका भक्त हो गया। आग्रह करके अपने उद्यानमें ले आया बँगलेमें ठहराया। सेवा-पूजा होने लगी। उसकी भक्ति-अनुरक्ति देखकर जनताकी श्रद्धा भी उमड़ पड़ी। अब तो जैसे राजाके ठाट-बाट वैसे ही महात्माके। वैभव-विलासका पार नहीं।

राजा धीरे-धीरे अपने ही श्रद्धेय त्याग-वैराग्यको न्यून करके स्वयं भी श्रद्धान्यून हो गये। बातचीतके प्रसङ्गमें उसने महात्मासे प्रश्न कर दिया—'आपमें और मुझमें क्या फर्क है ?'

महात्माने कहा—'चलो गंगातटपर घूम आयें, फिर तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देंगे।'

दोनों साथ-साथ घूमने निकले एक मील, दो मील, तीन मील। राजाने कहा—'भगवन् ! बहुत दूर आ गये हैं; चलिये, लौट चलें।'

महात्मा—'राजन् ! मेरी इच्छा बदरीनाथ जानेकी है, तुम भी मेरे साथ चलो।'

राजा घबड़ाया बोला—'महाराज ! मैंने रानी राजकुमार, मन्त्री किसीसे सलाह ली नहीं, राज्यकार्य किसीको सम्हलाया नहीं; भला मैं इस तरह कैसे चल सकता हूँ ?'

महात्मा—'अच्छा तो तू जा ! लौट जा ! मैं तो अब जाता हूँ। यही मुझमें और तुझमें अन्तर है।

महात्माजी मुस्कुराते हुए स्वानन्द-मग्न वहाँसे चल पड़े। ●

अबलालङ्कृतस्यास्य कथमेवंविधं बलम्।
इत्यर्भकगिरि श्रद्धां न दधुर्युक्तमेव ते॥

जो शकट जड़ था, जिसमें असुरका आवेश था, जो भगवद्रस और दर्शनका विरोधी था, वही भगवच्चरणस्पर्शके अनन्तर उलट गया। उलट गया अर्थात् जड़की जगह चेतन, असुरकी जगह देवता, भगवद्रस और सेवाके अनुकूल। वह ब्राह्मण और गायोंकी सेवाके उपयोगी हो गया। उत्सवमें समागत सज्जनोंके मनके आकर्षणका निमित्त बन गया। लोग आपसमें चर्चा करने लगे—देखो नन्द बाबाका सौभाग्य ! यशोदा मैयापर भगवदनुग्रह। ब्राह्मणोंका आशीर्वाद। बालकके प्रारब्ध कितने उत्तम हैं ? धन्य है शकटासुरभञ्जन ! ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्वानोंसे ★

महामहोपाध्याय पद्मविभूषण
श्री गोपीनाथ कविराज

परम सत्य चिदानन्दस्वरूप है। उसके साक्षात्कारके लिए प्राचीन महात्माओंने दो प्रकारके लौकिक मार्ग बताये हैं। पहला है तत्त्व-विमर्श और दूसरा रहस्योपासन। ये दोनों ही क्रम परस्पराश्रित हैं। कभी दोनों निरपेक्ष और स्वतन्त्र भी हैं। दोनोंका फल साक्षात्कार ही है। सत्यस्वरूप वस्तु परमार्थतः निर्विकल्प होनेके कारण सर्वथा मलहीन है। तथापि व्यवहार-भूमिमें भिन्न-भिन्न विकल्प मात्राके स्पर्शसे मलिनवत् प्रतीत होती है। यह एक ऐसा कारण है कि विरोध मिटाने और अविरोधकी प्रतिष्ठा करनेके लिए यथासम्भव समन्वय-दृष्टि करना चाहिए। सत्यका पूर्ण स्वरूप विकल्प-जालके विकराल गालसे सर्वथा मुक्त है, मन-वचनके अगोचर है, अखण्ड-अद्वय है तथापि मनोभूमि और वाग्भूमिमें भिन्न-भिन्न भावोंके भेदके कारण विकल्पित-सा प्रतीत होता है अर्थात् सर्वथा स्वच्छ होनेपर भी कलंकित-सा भासमान होता है।

हजारों वर्ष पूर्व किसी भक्तके मुखसे भगवान्‌की महिमाका विवरण करनेके बहाने यह अमृतवाणी मुखरित हुई थी कि 'ऋजुकुटिल-नानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णवमिव।' मनुष्य रुचि-वैचित्र्यके कारण ऋजु कुटिल अनेक मार्गोंसे चलता है, परन्तु उसका गन्तव्य एक ही है। ऐसा होनेपर भी व्यवहार क्षेत्रमें जहाँ कि इन्द्रिय और इन्द्रियोंका सञ्चार ही प्रधान है, प्रस्थान भेद अवश्यम्भावी है। न केवल भेद ही प्रत्युत किसीका कहीं किसीका कहीं परत्व, हितत्वका निर्णय भी स्वाभाविक है।

व्यवहार-भूमिमें दृष्टिसमन्वयका यही बीज है। जैसे अज्ञानदृष्टिसे कहीं भेद प्रतीत होनेपर भी वस्तुतः वहाँ अभेद ही रहता है, वैसे ही तात्त्विक दृष्टिसे अभेद होनेपर भी लौकिक दृष्टि भेदका आभास होता है। दोनोंकी एकवाक्यतासम्पत्ति ही समन्वयदृष्टिका फल है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीशङ्कराचार्यकी 'सत्यपि भेदापगमे' इस उक्तिमें जो भेदका अभाव होनेपर भी पराभक्तिके क्षेत्रमें भेदभावका निरूपण है वह भेद नहीं है, किन्तु अभेदका ही एक विशेष है। वह केवल भेदके कार्यका निर्वाहक मात्र है ऐसा किसी-किसीका मत है। इस दृष्टिसे अनुसन्धान करनेपर सर्वत्र समन्वय हो जाता है।

जैसा कि सभी देशोंमें है हमारे देशमें भी अत्यन्त प्राचीन कालसे ही प्रवक्ताओंमें दृष्टिभेदकी प्रवृत्ति देखनेमें आती है। और यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि अनादि कर्मके संस्कार-प्रभावसे प्रत्येक चित्तमें भाव आदिके भेदसे परस्परभेद दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक प्रवक्ता उसी संस्कारके अनुसार परमार्थ सत्यको भिन्न-भिन्न रूपोंमें देखता है। इसमें अपनी-अपनी दृष्टिका ही भेद है तत्त्वका नहीं। कोई भी दृष्टि सर्वथा त्याज्य नहीं होती। क्योंकि वह स्वाभावानुसार ही वस्तुपर पड़ती है। किसी वस्तुका त्याज्य और ग्राह्य होना किसी एक कारणसे नहीं होता। अनेक कारणोंके मिश्रणसे होता है। बालककी दृष्टिसे युवककी दृष्टि भिन्न है और युवककी दृष्टिसे वृद्धकी दृष्टि। इनमेंसे कोई भी त्याज्य या उपेक्षणीय नहीं है। सभी शास्त्रोंमें मतभेद देखनेमें आता है। जबतक यह गुण वैषम्यमय जगत् रहेगा तबतक दृष्टि वैषम्य भी अवश्य ही रहेगा।

यही कारण है कि दर्शन शास्त्रोंमें दूसरे दर्शनोंके सिद्धान्तोंका निराकरण करके अपने सिद्धान्तकी स्थापनामें बहुत उत्साह देखा जाता है। संशयोंका निरसन करके अपने मतकी पुष्टिके लिए विरोधी मतोंके खण्डनका प्रयास सर्वथा सुसंगत है। प्राचीनकालसे ही इस पद्धतिका अनुसरण किया गया है। उपासना, योग आदि पथके पथिकोंके लिए अपने-अपने सिद्धान्तमें श्रद्धा वृद्ध्यर्थ यह सब युक्तियुक्त ही है। पहले श्रद्धा न होनेपर ज्ञान होना सम्भव नहीं है। अतः श्रद्धाकी उत्पत्तिके लिए अपने विरुद्ध मतका खण्डन करना आवश्यक है, यही अधिकार-भेदका रहस्य है। सोपान-परम्पराके समान सभी भूमिकाएँ प्रज्ञा एवं विवेकको सम्पुष्ट करके विकल्पातिक्रमणके सामर्थ्यको बल देती हैं। यह सत्य हैं; परन्तु सम्यग् ज्ञानके अभावमें क्रमसिद्ध परम्परा-प्राप्त ज्ञान हृदयमें अधिरूढ़ नहीं होता।

इससे यह सिद्ध है कि बुद्धि-शुद्धिके लिए वादका भी महान् उपयोग है। विशेष-विशेष मतों-पन्थोंकी उत्पत्ति तो तादृश अनुभवसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही होती है, यह बात सत्य है, परन्तु साधनाके मार्गमें प्रगतिशील योगीकी स्थितिके अनुसार अनुभवोंमें सर्वदा भेदकी स्थिति बनी रहती है। वे निरन्तर बदलते रहते हैं। 'नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्' यह स्मृति भी मुनियोंके मतभेदका बोधन करती है। इस प्रकार योगियोंकी देश, काल आदिसे अनवच्छिन्न दृष्टि भिन्न-भिन्न अवस्थाओंको प्राप्त होकर बाधित होनेपर भी वस्तुतः बाधित नहीं होतीं। यह सर्वथा सत्य है कि पथमें चलनेवाले पथिकका ज्ञान क्रम-क्रमसे ही सम्पन्न होता है। यहाँ अक्रम ज्ञानकी तो चर्चा भी नहीं की जा रही है क्योंकि वह तो सर्वथा विकल्प रहित और अन्तिम होता है।

बड़ी-बड़ी विद्वत्परिषद् और विद्वद्-गोष्ठियोंमें हमलोगोंने चिरकालसे यही देखा है कि तत्त्व - विचारके प्रसङ्गमें प्रधानतासे दोनों पक्षोंका विरोध ही प्रकट किया जाता है। परस्पर मिलकर अविरोधकी चर्चा नहीं की जाती। सभी मतोंमें अविरोध निगूढ़ रहता है। कभी-कभी कहीं-कहीं वह परिलक्षित होता है। बड़े-बड़े दर्शन-ग्रन्थोंमें भी अपने विरोधीके मतका जितना प्रबल खण्डन मिलता है उतना मण्डन और समन्वयका पक्ष नहीं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि खण्डन भी अत्यन्त आवश्यक है। हम विद्वानोंसे यह आशा करना चाहते हैं कि जब वे एकत्र होकर अपने-अपने सिद्धान्तका परिष्कार करें तो युक्तियोंके द्वारा पर मतका खण्डन अवश्य करें; परन्तु परस्पर अविरोधी मतोंका समालोचन भी अवश्य करें। समन्वयकी दृष्टिसे यह अत्यन्त आवश्यक है। किसीका अमुक मत हमारे विरुद्ध है तो उसका अमुक मत सुसंगत और सम्मत भी है इसका विचार अवश्य करना चाहिए।

राष्ट्रनीति, व्यवहार और समाज-व्यवस्थाके क्षेत्रोंमें भी समन्वयदृष्टिकी अत्यन्त आवश्यकता है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने सात्त्विक ज्ञानका लक्षण बताया है विभक्त पदार्थोंमें अविभक्त-दर्शन। यह सिद्धान्त भी विरोधोंके समन्वयके उद्देश्यसे ही है। प्रायः परिच्छिन्न दृष्टिका आश्रय लेकर ही भिन्न-भिन्न मतोंकी समीक्षा की जाती है, परन्तु वहाँ सारीकी सारी विरोध मूलक हो जाती है।

यह संकटका समय है, सारा जगत् भेद ग्राहका ग्रास हो रहा है। चाहे स्वार्थकी बात हो, चाहे परमार्थकी, समन्वय दृष्टिके बिना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोई कार्य सिद्ध होनेवाला नहीं है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्मका दर्शन मनुष्यकी बुद्धिमत्ताका परिचायक है। सर्व सर्वात्मक है, इस वचनके अनुसार जैसे कर्ममें अकर्म विद्यमान् है, वैसे ही अकर्ममें भी कर्मका अस्तित्व है। परन्तु क्या स्थूल दृष्टिसे यह बात ज्ञात होती है? नहीं। यह अद्वैत दर्शन साक्षात् कारात्मक है। भगवान्‌ने अन्यत्र भी कहा है कि सबमें आत्मा और आत्मामें सब यही वास्तविक दर्शन है जैसे एकमें विश्वका दर्शन सत्य है वैसे ही विश्वमें एकका दर्शन भी सत्य है। भेदमें अभेद दर्शन ही विरोधको निवृत्त करता है।

इसलिए हम विद्वानोंसे आशा रखते हैं कि उन्हें तत्त्वदृष्टिसे सब दर्शनोंके समन्वयमें सावधान होना चाहिए। आत्म युक्तियोंसे अपने सिद्धान्तको परिष्कृत कीजिये। भिन्न-भिन्न साधन-प्रणालियोंका भी प्रचार कीजिये। यह सब तो यथापूर्व करना ही चाहिए। परन्तु आधुनिक समाजमें और धर्म प्रचारके विभिन्न क्षेत्रमें सर्वत्र शुभ दृष्टिका ही प्रसार करना चाहिए। जिससे परस्पर विद्वेष मनोमालिन्य आदि दोषोंकी वृद्धि न हो। इस ढंगसे काम करना चाहिए कि जो मत परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हों वे भी अविरुद्ध प्रतीत हों जैसे सबमें आत्मदृष्टि प्रशस्त है वैसे ही विरुद्ध भावोंमें अविरुद्ध दर्शन भी। अपनी उदार एवं उदात्त दृष्टिके विकाससे ही ऐसा होना सम्भव है। इसलिए विद्वानोंको अपनी विशाल दृष्टिका और भी विकास करनेके लिए अपने शास्त्रोंसे अतिरिक्त शास्त्रोंमें भी श्रद्धापूर्ण दृष्टि डालनी चाहिए और समन्वय दृष्टिसे सर्वत्र समाधान करना चाहिए।

यह सत्य है कि यह कार्य स्वल्प समयमें साध्य नहीं है। परन्तु सब विद्वान् मिलकर ऐसा करें तो सर्वथा असाध्य भी नहीं है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इससे विशेष जिज्ञासुओंका विशेष ज्ञानमें समादर नहीं किया गया है। वस्तुतः ज्ञान-सञ्चय तीन प्रकारका होता है—सामान्य ज्ञान, विशेष ज्ञान और समन्वय ज्ञान। इनमें विशेष ज्ञानका जैसा महत्त्व है, वैसा ही सामान्य ज्ञान और समन्वयज्ञानका भी। अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। विद्वानोंके लिए दिग्दर्शन मात्र पर्याप्त है।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमनगरकी गलियोंमें

(पू० महाराजश्री)

महाराजाधिराज श्रीभोजदेवने अपने 'शृङ्गारप्रकाश' ग्रन्थमें यह स्थापना की है कि वास्तविक रस केवल शृङ्गार ही है—'शृङ्गारमेव रसनाद्रसमामनामः।' उनका कहना है कि जिस सहृदय पुरुषको यह रस प्राप्त है, वस्तुतः वही रसिक है। वीर, अद्भुत आदिमें जो रसत्वकी प्रसिद्धि है, वह गतानुगतिक और वटयक्षवत् है।

१. आइये, आपको शृङ्गार-रसकी राजधानी श्रीवृन्दावनमें ले चलें। एक सासने अपनी परम सुन्दरी युवती पुत्रवधूको इस अपराध-पर घरमें बन्द कर दिया कि यह नयी-नवेली छोकरी तरह-तरहके बहाने बनाकर बाहर निकल जाती है और आनन्दराशि व्रजेन्द्रनन्दनको सानुराग निहारती है। बहूकी सहेली उससे मिलनेके लिए आयी। बड़े प्रेमसे पूछा—'सखि! कैसे समय बीतता है?' सुनिये, वह क्या कहती है—

स्फुरति स एव हि परितः
सदननिरोधोऽपि मे मुधैवालि।
तस्मिन् वसति मनो मे
मनोमोहनः सदा वसति॥

'वीर! क्या सुनाऊँ? मुझे मन्दिरमें बन्दी बनाना सर्वथा व्यर्थ है! देखो! देखो!! वही, वही तो सब ओर दीख रहा है। रोकनेपर भी मेरा मन उसीके पास जाकर आराम-विश्राम पाता है, उन्हींके पास रहता है और वे मनमोहन भी सदा मेरे ही पास बसते हैं।'

यह प्रेमका ही चमत्कार है कि वियोगमें भी संयोगका अनुभव हो रहा है।

●

२. एक सखी अपनी सखीको प्रियतमके पास पहुँचाकर लौटने लगी। वह व्याकुल होकर बोली—'अरी सखि! यह विरह तो मुझे छोड़ता ही नहीं है। मेरे पीछे-पीछे प्रियतमके पासतक आ गया है। देखो, देखो! यह मेरी पलकें गिरा-गिराकर मेरे मानसको व्याकुल कर रहा है।'

दयितान्तिके रहस्यपि विसृजति
विरहो न सखि! ममानुगतिम्।
मानसमहह मदीयं निमिषमि-
षेणालमाकुली कुरुते॥

यह भी प्रेमकी अपूर्व लीला ही माननी पड़ेगी कि यह गोपी संयोगमें विरहव्यथासे पीड़ित है। ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. व्रजसे लौटनेपर उद्धवसे श्रीकृष्णने पूछा—'मेरी प्रेयसीका कुशल सुनाओ !'

उद्धव—'जी रही है।'

श्रीकृष्ण—'अरे भाई ! मैं कुशल पूछ रहा हूँ।'

उद्धव—'कह तो दिया कि जी रही है।'

श्रीकृष्ण—'क्यों बार-बार वही बात कह रहे हो ?'

उद्धव—'जबतक उसकी साँस चल रही है तबतक 'वह मर गयी'—ऐसा मैं कैसे कहूँ ?'

तस्याः कुशलं जीवति
कुशलं पृच्छामि जीवतीत्युक्तम्।
पुनरपि तदेव कथयसि
मृतां नु कथयामि वा श्वसिति ॥

●

४. दर्शन कीजिये ! यह गोपी विरहसे व्याकुल, कृश हो गयी है। जीवनकी आशा छूट चुकी है। सखी उसके प्राणोंको जीवित रखनेके लिए संजीवनी बूटीके रूपमें कृष्णकथा सुना रही है। वह विरहिणी कहती है कि क्या तू अपनी सखीकी (मेरी) दुश्मन है ? यदि तू मुझे लेशमात्र भी सुख देना चाहती है तो उसकी चर्चा-का सर्वथा त्याग कर दे। सखि ! क्या तुझे उसके सिवाय दूसरी कोई चर्चा आती ही नहीं है। और कुछ स्मरण कराओ। हाय हाय ! चाहे कैसे भी हो मेरे मनसे उस मोहनका विस्मरण करा दे !

सन्त्यज सखि ! तदुदन्तं यदि
सुखलवमपि समीहसे सख्याः।
स्मारय किमपि तदितरद्
विस्मारय हन्त मोहनं मनसः ॥

●

५. करीलकुंजमें एक वृद्ध रसिक महात्मा विराजमान हैं। बहुत दिनों-के बाद उनका एक शिष्य कहींसे घूम-फिरकर आया। उसके मनका संशय महात्माजी समझ गये। बोले—'क्यों रे ! अभीतक तेरी समझमें नहीं आया ? मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरके मुखारविन्दका दर्शन सर्वसन्तापहारी हृदयाह्लादकारी नयनामृत श्रीनिकेतन है। उनके दर्शनसे गोपियोंके हृदयमें जो भाव विशेष उदय होता है, उसे तू काम समझता है ! अरे भाई, यह काम नहीं है। परम क्षेममय उत्तम प्रेम है। इसमें स्वसुखकी वासना नहीं है। यह बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके लिए भी अभिलाषका विषय है।'

यो गुञ्जन्मुरलीमञ्जु-
मुखाम्बुज - विलोकने।
कामो नामोत्तमः प्रेमा
कोऽपि गोपनतभ्रुवाम् ॥

'वृन्दावनकी माधुरी इन रसिकनि मिलि आस्वादन कियौ।'

श्रीरसिकोत्तंसकी कृति 'प्रेमपत्तनम्'के आधारपर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न्यायकथा

सास-बहू

एक संन्यासी महात्मा मध्याह्नके समय भिक्षाके लिए किसी गृहस्थके द्वारपर बोले—'नारायण !' घरमें अकेली बहू थी। वह द्वारपर आयी और महात्माको प्रणाम करके निवेदन किया—'महाराज ! घरमें अभी रसोई तैयार नहीं है।' महात्माजी दूसरे घरोंसे भिक्षा लेकर बस्तीके बाहर निकल गये। मार्गमें एक प्रौढ़ महिला मिली। उन्होंने प्रणाम करके पूछा—'महात्माजी ! आप भिक्षाके लिये मेरे घर पधारे या नहीं !' महात्माने कहा—'मैं गया तो था; परन्तु बहूने कहा कि अभी रोटी तैयार नहीं है।' सासने कहा—'अच्छा ! ऐसा ! ! आप लौट चलिये मेरे साथ; मैं अभी बहूसे पूछती हूँ।' हठ करके वह महात्माको अपने घर ले आयी। बहूसे सब बात समझकर उसे महात्माके पास ले आयी और डाँटने लगी—'क्यों री बहू ! कलकी छोकरी ! अभी इस घरमें आये वर्ष दो वर्ष भी नहीं हुआ और घरकी स्वामिनी बन बैठी ! तुझे क्या अधिकार था महात्माजीसे यह कहनेका कि अभी रसोई तैयार नहीं है ? घरकी मालिक मैं हूँ। देख, अब मैं कहती हूँ, महात्मा ! अब चले जाओ ! घरमें रोटी तैयार नहीं है।' महात्माजी हँसते हुए चले गये। वस्तुतः तपस्या—अपमान-सहन-की शक्ति बढ़ाना ही तो भिक्षा माँगनेका उद्देश्य है। यह बहूपर निरर्थक अधिकारकी धौंस जमाकर दूसरेको दुःख देनेका अच्छा उदाहरण है। इसका दर्शन शास्त्रमें श्वश्रू-सुभगा न्यायके नामसे प्रयोग होता है।

●

अस्थिर विषय प्रवाह, इन्द्रियोंमें क्या निष्ठा।
मन गति अतिशय चपल भोग सुखकी न प्रतिष्ठा॥
क्षय-लय सम्मुख खड़े, कहो क्रय विक्रय कैसा।
किससे योग वियोग कहाँ क्या ऐसा वैसा॥
जगके ह्रास विकास ईशके हास्य-लास्य हैं।
इनमें लेश न क्लेश प्रेम, आदेश भास्य हैं॥
स्पन्दन जीवन स्यन्दनके पथ-निर्देशक हैं।
प्रकृति विकृति कृति संस्कृति प्रभुके उपदेशक हैं॥

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री श्रीहरिबाबाजीके मुखारविन्दसे

एक था राजा। धर्म और न्यायका देवता। उसके एक थे राजकुमार बड़े शानदार। सारे राज्यमें उनकी तूती बोलती थी। घोड़ा चले तो कोई सामने न पड़े। कोई सामने मुँह न खोले। तेज प्रताप सर्वत्र व्याप्त था। एक दिन उनकी सवारी निकली। एकाएक सामने एक बछिया आ गयी। बचानेकी भरसक चेष्टा करनेपर भी बेचारी पिच गयी। वहींकी वहीं ढेर हो गयी।

राजाकी सभा बैठी। राजकुमारको दण्ड दिया जाय। न्यायकी अखण्ड रक्षाकी जाय। किसीने राजकुमारके लिए जप बताया, किसीने तप, किसीने तीर्थयात्रा और किसीने उपवास; परन्तु राजाको कोई प्रायश्चित्त पसन्द नहीं आया। उसने कहा—'सब लोग ठकुरसुहाती बोलते हैं। इसका एक ही प्रायश्चित्त है। मेरी सवारी निकले। ठीक उसी स्थानपर बछियाकी जगह पर राजकुमार मेरी सवारीके सामने आ जाय और कुचल जाय। यही एक निष्कृति है।' सुनकर राजकुमारको सन्तोष हुआ।

राजाकी सवारी निकली। उसी स्थानपर राजकुमार सवारीके सामने कूद पड़ा; परन्तु यह क्या? राजकुमारका बाल भी बाँका नहीं हुआ। मरी हुई बछिया शंकरके रूपमें प्रकट हो गयी। राजा; तुम्हारे धर्म और न्यायकी परीक्षाके लिए मैं ही वह बछिया बनकर आया था। तुम परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। तुम्हारा शासन दीर्घकाल तक रहे! तुम्हारी प्रजा सुखी हो। कठोर शासन, निष्पक्ष दण्ड और धर्मपर दृढ़ आस्था हुए बिना जनता सुखी एवं समृद्ध नहीं हो सकती।

●

तन यौवन धन भवन नाशके दन्द फन्द हैं।
मायाके छल छन्द बन्धु बान्धव अमन्द हैं॥
धूप-छाँहके रंग संग सब मोह अङ्ग हैं।
अंग अंग श्रीरङ्ग रँगोरे यह अमिट रङ्ग है॥
विष भोजनसे मरण विषयका स्मरण मरण है।
कृष्ण चरण वर वरण शरण संसार तरण है॥
पुत्र कलत्र सुमित्र शत्रुकी कथा व्यथा हैं।
जीवन वनकी दहन सर्वथा त्याज्य वृथा हैं॥

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लाला लब्भूशाह

(सच्ची घटना)

अमृतसरके लाला लब्भूशाह बम्बईमें निवास करते थे। समृद्ध एवं सुखी परिवार। ७० वर्षकी आयु। आँख, कान, दाँत, शरीर सब ठीक उन्होंने एक दिन तीन बजे अपने आफिसको फोन किया अपने पौत्र बालकृष्णको—'बेटे ! जल्दी आ जाओ।' वे आ गये। उन्होंने पूछा—'तुम्हारे पिता कहाँ हैं ?'

उत्तर—'अमृतसर गये हैं।'

लाला—'यह अच्छा नहीं हुआ। अच्छा सुनो ! कल मैं जाऊँगा। छुट्टीका दिन है, बाजारमें कोई चीज नहीं मिलेगी। चार टीन घी और दस मन चन्दन मँगा लो। विमान अच्छी तरह सजाना, खास करके ताशके पत्तोंसे। ठीक आठ बजे प्रातः मैं चला जाऊँगा।'

बालकृष्णको विश्वास नहीं हुआ। दो-चार गाली सुननी पड़ी। माता, चाचा, पत्नी, सबको इकट्ठा किया। सामग्री मँगानेके आदेश दे दिये गये। लाला लब्भूशाह जी अपने जीवनके बड़े शौक ताशके खेलमें मस्त हो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल सब सम्बन्धी इकट्ठे हुए। तैयारी पूरी। बालकृष्णने पूछा—'दादा ! किसीको एक मिनट बादकी बात मालूम नहीं है कि क्या होगा ? आप स्वयं स्वस्थ, प्रसन्न हैं और कह रहे हैं कि कल आठ बजे जाऊँगा। आपको कैसे ज्ञात हुआ कि आठ बजे जाऊँगा ?'

लाला लब्भूशाह बोले—'सुन बेटे ! मैंने पूजा-पाठ, जप-ध्यान कुछ नहीं किया है; किन्तु जीवनमें कभी झूठ नहीं बोला है। यही मेरा तप है। इसीके कारण मुझे सब कुछ ज्ञात हो जाता है।' ऐसा कहते-कहते वे लुढ़क गये। ज्योतिमें ज्योति मिल गयी।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुम, मैं एक !

पूज्य महाराजश्री

एक दिन मैं ध्यान करने बैठा। मैंने प्रार्थना की—'प्रभु ! तुम मेरे जीवनाधार हो।' मैंने अनुभव किया कि प्रभु मेरे नीचे हो गये और मुझे अपनी पीठपर लेकर अदृश्य हो गये।

मैंने कहा—'नाथ ! तुम मेरे स्वामी हो।' ऐसा अनुभव हुआ कि वे मेरे नेत्रों और मस्तिष्ककी ऊँचाईसे भी ऊपर उठ गये हैं और मुझे नहीं दीख रहे हैं।

मैंने कहा—'तुम मेरे सखा हो।' वे बगलमें आकर खड़े हो गये। मैं उन्हें छू सकता था; पर देख नहीं सकता था। सिर घुमानेपर वे भी घूम जाते थे।

मैंने कहा—'तुम मेरे पिता हो।' उन्होंने झट अपनी गोदमें बिठा लिया। मेरी पीठ उनकी छातीसे सट गयी; परन्तु मैं उन्हें देख नहीं पाता था।

मैंने कहा—'तुम मेरे लाड़ले लाल हो। स्नेहभाजन शिशु हो !' वे आकर मेरी गोदमें बैठ गये। मेरे वक्षःस्थलसे उनकी पीठ सट गयी; परन्तु देखनेके लिए आँख नीची करनेपर वे हमारे छातीमें समा जाते थे। स्पर्श मधुर था; परन्तु आँखोंकी प्यास बुझती न थी।

मैंने कहा—'प्यारे ! यह क्या ? मैं प्रेमी, तुम प्रियतम ! यह आँखमिचौनी क्यों ?' वे सामने आकर बैठ गये। आँखसे आँख मिलाकर बोले—'मैं प्रेमी, तुम प्रियतम ! तुम्हारा 'मैं' मेरा मैं।' मैंने कहा—'तुम्हारा 'मैं' मेरा 'मैं'।'

वे जैसे मुझसे एक हो गये हों। दोनोंका नाम तुम-तुम और दोनोंका नाम मैं-मैं। 'तुम-मैं' एक। खो गया विवेक।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपराधी कौन नहीं है ?

पूज्य महाराजश्री

भगवान् श्रीरामचन्द्रने लङ्कापर विजय प्राप्त की। रावण मारा गया। हनुमानजी विजय-सन्देश लेकर अशोकवनमें श्री जानकीजीके पास गये। कुशल-मङ्गलके पश्चात् उन्होंने माता जानकीसे प्रार्थना की कि माँ, इन राक्षसियोंने तुम्हें इस दुःखमयी दशामें गर्जन, तर्जन, दुर्वचन आदिके द्वारा बहुत सताया है। इसलिए इन्हें घूँसा, लात आदिके द्वारा मैं इन्हें दण्ड दूँ; तुम मुझे आज्ञा दो। तुम्हारी आज्ञाकी प्रतीक्षा है।

वात्सल्यमयी जननीने कहा—'हनुमान ! ये राक्षसियाँ तो राज-पराधीन आज्ञाकारिणी हैं; इनपर भला क्रोध कैसा ? वह सब दुःख और संकट तो मेरे दुष्कृतजन्य भाग्यके परिणाम थे। ऐसी बात तुम्हारे-जैसे सत्पुरुषके मुँहसे शोभा नहीं देती। रावणके मर जानेपर ये मेरा अपमान कहाँ करती हैं ? सुनो ! अपने साथ विश्वासघात करनेवाले मनुष्यकी रक्षा करनेके लिए ऋक्षने व्याघ्रके प्रति यह उपदेशरत्न दिया था—'एकका किया हुआ पाप दूसरेको नहीं लगता। मर्यादाका पालन अवश्य करना चाहिए। सच्चरित्रता ही सन्तोंका आभूषण है। चाहे कोई पापी हो या पुण्यात्मा, भले ही वध करने योग्य क्यों न हो, श्रेष्ठ पुरुषको उसपर करुणा ही करनी चाहिए। विश्वमें ऐसा कोई नहीं है, जिसने कुछ-न-कुछ अपराध न किया हो, **'न कश्चिन्नापराध्यति।'** पापपरायण हिंसाविहारी क्रूर पुरुष जिस समय पाप कर रहा हो, उस समय भी उसका अहित नहीं करना चाहिए।

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥
पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥
लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह इतिहासके स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य शुभ वचन है। आप अपने मनमें एक कल्पना कीजिए कि यदि जगदम्बा जानकी हनुमानजीकी प्रार्थना स्वीकार कर लेतीं तो क्या होता ? युगल-सरकार श्रीसीतारामका उज्ज्वल यश कलङ्कित होता। हनुमानजी स्वयं अपराध-भाजन बनते। भक्तोंका आदर्श बिगड़ जाता। सब किये-करायेपर कालिख पुत जाती।

प्रश्न यह उठता है कि फिर अगाध बुद्धि, परम भक्त आञ्जनेयने ऐसी प्रार्थना क्यों की ? श्री जानकीजीके हृदयमें कितना वात्सल्य, कितनी उदार सौहार्द है, इसको अभिव्यक्त करनेकी यह एक चातुर्यपूर्ण प्रक्रिया है। इस प्रार्थनाके द्वारा अपनेको दीन प्रकट करके भी माताका उत्कर्ष प्रकट करना श्रीहनुमानजीका अभिप्रेत अर्थ है। जबतक मनुष्य अपनेको छोटा नहीं करेगा, तबतक वह दूसरेका बड़प्पन ठीक-ठीक अभिव्यञ्जित नहीं कर सकता।

●

छोटीवस्तु बड़ा गुण !

महाराजश्रीके घुटनोंमें वर्षोंसे बड़ी पीड़ा थी। अनेक बड़े-बड़े विशेषज्ञ भारत-प्रसिद्ध डाक्टरोंकी चिकित्सासे कोई लाभ नहीं हुआ। दिल्लीके वैद्य गौरीशंकर खन्नाने एक दिन आग्रह किया कि आप मेरी तीन पुड़िया खा लीजिये। दर्द अच्छा न हो तो छोड़ दीजियेगा। महाराजश्रीने तीन पुड़िया खायी और वर्षोंसे फिर वह दर्द कभी नहीं हुआ। इसका यह अभिप्राय निकलता है कि किसी व्यक्ति या वस्तुको छोटा कभी नहीं समझना चाहिए।

याद दिलाना !

श्री भक्त कोकिल साईंके एक सेवकसे कोई अपराध हो गया। उनके टहलने जानेका समय था। उन्होंने सेवकको बुलाकर कहा—'तुमने यह अपराध किया है। तुम्हें इसका दण्ड दिया जायगा; परन्तु मैं लौटनेपर शायद भूल जाऊँ तो मुझे स्मरण दिलाना।'

आप स्वयं समझ सकते हैं कि साईंके अन्तःकरणमें अपराधकी कोई रेखा नहीं थी, नहीं तो स्मरण दिलानेका आदेश देनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आनन्दवाणी

जो काम तुम करते हो वह क्या इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसके लिए भगवान्‌को छोड़ा जा सके या थोड़ी देरके लिए भी भुलाया जा सके ?

तुम्हारी वजहसे लोगोंको सुख अधिक मिलता है या दुःख ?

किसीकी कुछ सेवा करनेके बाद अभिमान तो नहीं होता कि मैं श्रेष्ठ हूँ।

विश्वमें सेवाकी जितनी आवश्यकता है, भगवान् भूखे, नंगे, रोगी आदिके रूपमें तुम्हारी जितनी सेवा लेना चाहते हैं उसकी दृष्टिसे तुम्हारी सेवा कितनी कम है।

किसी काममें त्रुटि होना असम्भव नहीं है; परन्तु तुरन्त फिर कभी न करनेके लिए सावधान हो जाना चाहिए।

गिर पड़ना अपराध नहीं है। गिरके फिर न उठना और लक्ष्यसे विमुख हो जाना अपराध है।

समाधि न लगनेका कारण क्या है ?

उत्तर प्रदेशमें एक बड़े प्रतिष्ठित तथा समाज-सेवी ब्रह्मचारीजी हैं। उनके कई विद्यालय और अस्पताल चलते हैं। एक दिन उन्होंने माँ श्रीआनन्दमयीसे प्रश्न किया—'माँ ! हम चार मित्र घरसे समाधि लगानेके लिए निकले थे। बहुत अभ्यास किया, परन्तु समाधि नहीं लगी। इसका क्या कारण है ?'

माँ—'तुम लोग किसलिए समाधि लगाना चाहते थे ?'

ब्रह्मचारीजी—'हम लोगोंका संकल्प था कि समाधि लगनेके बाद भिन्न-भिन्न स्थानोंपर योगाश्रम खोलेंगे और लोगोंको योगकी शिक्षा-दीक्षा देंगे।'

माँ—'बस, इसी वासनाके कारण समाधि नहीं लगी। जबतक समाधिके बाद कुछ भी करनेकी वासना होती है तबतक समाधि लग ही नहीं सकती।'

●

रे रे !

संगीतज्ञ : देवी जी, आपने इस संगीतकी शिक्षा कहाँसे प्राप्त की ?

गायिका : क्यों; डाकके कोर्ससे।

संगीतज्ञ : कहीं कोई पाठ डाकमें ही तो नहीं रह गया !

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक सार-संक्षेप

वासनाके विलास

• ★ •

पण्डितप्रवर श्री रघुनाथ शर्मा

अध्यक्षचर वेदान्तविभाग, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय

• ★ •

(१)

वासना तीन प्रकारकी होती है :

(अ) कर्म-वासना : मृत्युसे पहले, आनेवाले जन्मके अनुरूप कर्म-वासनाओंके उदय होनेपर ही जीव पहला शरीर छोड़कर उन्हीं कर्म-वासनाओंके अनुरूप जन्म प्राप्त करता है।

(आ) अनुभववासना : पूर्व जन्मकी अनुभव-वासनाएँ, जन्म लेनेपर प्रकट हो जाती हैं और बिना किसी शिक्षाके ही प्राणी अनुभव-वासनाके अनुरूप चेष्टा करने लगता है।

(इ) अविद्या-वासना : अनादि असंख्य जन्मोंसे संचित अविद्या-वासनासे यह प्राणी देह-गेह आदिमें मैं-मेरेका अध्यास करता है।

आत्मतत्त्वका ज्ञान होनेपर वासनाओंका परिक्षीण हो जाना ही मोक्ष है। यह आत्मतत्त्वज्ञान क्या है ? अविद्या और उसकी वासनाओंसे कल्पित वाह्य तथा आध्यात्मिक अशेष प्रपञ्चके अधिष्ठान तत्त्वका प्रत्यक्चैतन्याभेदेन साक्षात्कार होना। इसीसे अविद्या और उसकी वासनाओंकी निःशेष निवृत्ति होती है, ठीक वैसे ही जैसे अधिष्ठान रज्जुके साक्षात्कारसे सर्पादि-वासनाओंकी।

मुण्डकोपनिषद्में—'भिद्यते हृदय-ग्रन्थिः' इस मन्त्रके द्वारा हृदयाश्रित वासनाओंका ही निर्देश किया गया है। हृदयग्रन्थि पदका अर्थ है—अविद्या-वासना, क्योंकि ठीक उसके बाद ही संशयोच्छेदका उल्लेख है। यह तो स्पष्ट ही है कि संशयका कारण अविद्या-वासना है। आत्मदर्शनसे अविद्या-वासनाओंके प्रक्षीण होनेपर अनुभव एवं कर्मजन्य वासनाएँ भी क्षीण हो जाती हैं; क्योंकि उनका मूल भी वही है। कारिकावलीमें स्पष्ट कहा गया है कि धर्माधर्म अविद्या-वासनाजन्य हैं। इसीसे मुण्डक-मन्त्रमें पुण्यापुण्यरूप कर्म-वासनाका क्षय भी निर्दिष्ट है। अनुभव-वासनाएँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भी अध्यासरूप ही हैं। इसलिए आत्मदर्शनसे तीनों प्रकारकी वासनाओंका नाश हो जाता है।

(२)

योगवासिष्ठ आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें यह बात स्पष्ट कही गयी है कि वासनात्रय ही संसारका मूल है और उनका प्रक्षय ही मोक्ष है। उदाहरणके लिए वासना, भोगभावना, पदार्थ-वासनादार्ढ्य सब बन्धके नामान्तर हैं। वासनाशान्ति, वासनातानव, निर्वासनता ये सब मुक्तिके अभिधान हैं। मनकी भावनासे ही देहकी प्राप्ति होती है। अविद्याका नाश ही परम श्रेय है—इत्यादि। यहाँतक कहा गया है कि यदि निर्वासन जीवन्मुक्त उन्मत्त ताण्डव कर रहा हो तो वह बुद्ध-समाधिके समान है। जैसे कथा-श्रवणके समय किसीका मन दूर चला जाय तो वह सुनता हुआ भी नहीं सुनता है उसी प्रकार निर्वासन चित्त करता हुआ भी नहीं करता है। सवासन होनेपर न करना भी करना ही है जैसे कोई गड्ढेमें गिरकर निस्पन्द हो गया हो। इन प्रमाणोंसे सिद्ध है कि त्रिविध वासना ही बन्धन है और उनका क्षय ही मोक्ष है। इस बातको अवैदिक दर्शन भी स्वीकार करते हैं। 'पंजिका'के कर्मफलपरीक्षा-प्रकरणमें एक कारिका है—'कार्य-कारणभूताश्च तत्राविद्यादयो मताः।' इसकी व्याख्या 'पंजिका'में 'रागादि-क्लेशवासित चित्त'को ही संसार बतलाया गया है। क्लेशोंसे विनिर्मुक्त चित्त ही भवान्त अर्थात् मोक्ष है।

(३)

कोई-कोई ऐसी शंका करते हैं कि आत्मविद्यासे त्रिविध वासनाका क्षय स्वीकार कर लेनेपर जीवन्मुक्त पुरुषके द्वारा भिक्षाटन, उपदेश आदि प्रवृत्तियोंकी उपपत्ति नहीं होगी, क्योंकि प्रवृत्तिके मूलमें इच्छा और इष्टसाधनता-प्रकार ज्ञान रहता ही है। कठोपनिषद्में जीवन्मुक्त पुरुषका हृदय काममुक्त है ऐसा कहा गया है, फिर वासना, काम और प्रवृत्ति न होनेसे वह किसी कर्ममें कैसे लगेगा। परन्तु यह पूर्वपक्ष उचित नहीं है। क्योंकि जीवन्मुक्त पुरुषमें भी जन्मांकुर-विवर्जित भुने बीजके समान वासना रहती है। उसमें अविद्या-वासना, विषयापेक्षा आदि न होनेपर भी जीवननिदान प्रारब्धजन्य इच्छाएँ और उन्हें पूर्ण करनेके लिए इष्ट-साधनताका ज्ञान रहता है। अतएव

भोग लालसा रोग
योगमें राग जगावे।
हो वियोग तो
अन्तरङ्गमें आग लगावे॥
कटै न आशा-पाश
वासना नाश न पावे।
उर आनन्द अमन्द
चन्द्र उल्लास न पावे॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुत्कट वासना भी होती रहती है। वह इच्छा रागरूप नहीं है, क्योंकि वह अपने आश्रयको रँग नहीं सकती। यही कारण है कि उसकी इच्छा और प्रवृत्ति भी अनुत्कट ही होती है और उससे धर्माधर्मकी उत्पत्ति नहीं होती। न्यायदर्शनका तात्पर्य भी इसी पक्षमें है। मिथ्याज्ञान के निवृत्त होनेपर रागादि-दोष-निवृत्तिका तात्पर्य उत्कट प्रवृत्तिकी निवृत्तिसे ही है। योगवासिष्ठमें जीवन्मुक्तोंकी वासना शुद्ध होती है, उसमें जन्मकी हेतुता नहीं होती। यह बात स्पष्ट कही गयी है। देखिये—उपशम-प्रकरण एवं वैराग्य-प्रकरण। पुनर्जन्मके अंकुर अविद्या-प्रत्ययजन्य वासनाजन्य ही हैं। श्री-शङ्कराचार्यके अनुयायी इस मतका प्रतिपादन करते हैं कि आत्मज्ञानसे अविद्यामूलक प्रत्ययोंका प्रारब्धक्षय-पर्यन्त बाध ही होता है, निवृत्ति नहीं। ऐन्द्रजालिक द्वारा प्रदर्शित वस्तुसम्बन्धी प्रत्यय मिथ्यात्वनिश्चय होनेपर भी निवृत्त नहीं होते। इसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुषमें भी बाधित प्रत्यय और वासनाएँ रहती हैं, इसमें कोई अनुपपत्ति नहीं है। इस प्रकारकी प्रवृत्तियोंसे धर्माधर्मकी उत्पत्ति नहीं होती; क्योंकि जीवन्मुक्त पुरुषमें कर्तृत्वाभिमान नहीं रहता, जैसा कि कौषीतकी उपनिषद्में बहिर्मुख यतियोंको कुत्तोंसे नुचवानेपर भी

जैसे पश्चिम-पूर्व
पादगतिके परिवर्तन।
रजनी दिवस विभाग
काम कलनाके नर्तन॥
कण-कण क्षण-क्षण
जोड़ तोड़के करते कर्तन।
वैसे ही सुख दुःख
बहिर्मख मनके वर्तन॥

इन्द्रके निष्पाप होनेका उल्लेख है। गीतामें 'यस्य नाहंकृतो भावो' इस श्लोकके द्वारा यही भाव प्रकट किया गया है। सिद्धान्तलेशके चतुर्थ परिच्छेदमें कहा गया है कि तीन प्रकारसे अविद्यालेशकी अनुवृत्ति होती है—

१. ज्ञानके द्वारा आवरण नष्ट होनेपर भी प्रारब्धरूप प्रतिबन्धके कारण विक्षेपांशकी अनुवृत्ति होती रहती है।

२. हींग आदिकी गन्धसे वासित पात्रको धो देनेपर भी उसकी गन्धका लेश बाधितानुवृत्तिसे चलता रहता है।

३. वस्त्रके जल जानेपर भी उसका आकार बना रहता है। इसीको बाधितानुवृत्ति कहते हैं।

यही जीवन्मुक्त पुरुषमें लेशकी अनुवृत्ति है। इसे बाधितानुवृत्ति कहते हैं।

सर्वज्ञात्म मुनि तत्त्वज्ञानका उदय हो जानेपर लेशशेषको असम्भव मानते हैं। इसलिए उनके मतमें जीवन्मुक्ति-श्रुति तत्त्वज्ञानके लिए

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रोत्साहित करनेमात्रके लिए है। इसीलिए अर्थवाद है।

(४)

यह वासना क्या है? इसके होनेपर ही मनुष्य किसी काममें अभिनिविष्ट होकर प्रवृत्त होता है। इसके न रहनेपर प्रवृत्ति नहीं होती। अच्छा; तो सुनिए पुण्य अथवा पापरूप कर्मसे अयथार्थज्ञान वा भ्रमजन्य पूर्वप्रज्ञासे अन्तःकरणमें जो संस्कारविशेष पैदा होता है उसे वासना कहते हैं। जो अपने आश्रयको स्वरूपसे लिप्त कर दे उसको वासना कहते हैं। जैसे खस-चन्दन आदिसे तैल आदिको गन्धाधिवासित कर देते हैं। देखनेमें आता है कि पूर्वप्रज्ञा, संस्कार और स्मृति इनमें समानविषयक होनेसे कार्यकारणभाव है। इसीसे मलिन सत्त्वमें स्मृति और शुद्ध सत्त्व योगियोंमें भूतवस्तु-विषयक साक्षात्कार पैदा होता है। शास्त्रोंमें इसका अनेक नामोंसे व्यवहार हुआ है—वासना, संस्कार, भावना, राग, आशय, प्रकृति, स्वभाव और शील आदि। कहीं-कहीं स्मृतिके कारणरूपमें भी इसका प्रयोग होता है। वासना परिपुष्ट होनेपर अविद्यमान वस्तुका भी दर्शन होने लगता है। मणि-रूप्यादिका विज्ञान भी वासना-प्रकर्षसे ही होता है।

इसी वासनाको राग भी कहते हैं; क्योंकि यह चित्तको रँग देती है। इसीसे जब पुरुषके मनमें किसीके प्रति अतिशय राग होता है तब उसे रक्त, अनुरक्त आदि शब्दसे कहा जाता है। बृहदारण्यकोपनिषद्में विविध उपासनासे उपरक्त चित्तको हरिद्रारंजित पट, श्वेत ऊर्णावस्त्र, इन्द्रगोप, अग्निज्वाला, कमल और सकृत् विद्युत्के दृष्टान्तसे स्पष्ट किया गया है। ये सब वासनाके ही रूप हैं। इनके भाष्यमें शंकराचार्यने कहा है—वासनाका आदि, अन्त, मध्य, संख्या, देश, काल और निमित्तका अवधारण नहीं किया जा सकता; क्योंकि वासना और उनके हेतु असंख्य हैं। ये दृष्टान्त तो केवल प्रकारका प्रदर्शन करनेके लिए हैं। भाष्यमें जो रागमें तारतम्य बताया है, वह कहीं विषयविशेषकी अपेक्षासे है और कहीं चित्तवृत्तिकी अपेक्षासे है। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे लोकमें कोई स्वभाव-सुन्दर वस्तु हो तो उसे देखकर ममत्वा-

---

अहं भाव सिंहासनपर
आसीन हीन मति।
विषय वासना लीन
इन्द्रियाधीन क्षीण गति॥
शिश्नोदर रसपीन
मीन पाठीन बने-से।
सब प्राचीन नवीन
दुःखसे दीन सने-से॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भिमानरहित व्यक्तिका चित्त भी रक्त हो जाता है। यह विषयका सौन्दर्य है। जहाँ वस्तुमें ममत्वाभिमान पहलेसे ही हो तो असुन्दर वस्तुमें भी चित्त रम जाता है। इसमें केवल वृत्ति ही हेतु है।

विषय भी सात्त्विक आदि अनेक प्रकारके होते हैं और चित्तवृत्ति भी। इसीसे रागमें न्यूनाधिक्य भी होता है। ममत्वाभिमानमूलक राग अविद्याकृत है और उसे दूर करना कठिन है। इन्द्रगोप (वीरबहूटी) आदि सहज रक्त हैं। हरिद्रारंजित वस्त्र कृत्रिम राग है। वह दोषदृष्टिसे निवृत्त हो जाता है। सहज रागके उदाहरण बहुत-से हैं। वे रागके प्रकर्ष और अपकर्षको प्रकट करते हैं। विद्युत्का उदाहरण हिरण्यगर्भकी वासना बतानेके लिए है। उनकी उपाधि है बुद्धि-समष्टि। इसलिए सब प्राणियोंकी बुद्धि उसमें स्थित रहती है और उसमें एक बार ही सर्वार्थ प्रकाशित हो जाता है। वासना कभी-कभी निर्व्यापार भी रहती है, इसलिए उसका नाम आशय है और वही जन्मका कारण है इसलिए प्रकृति भी कही जाती है।

(५)

बृहदारण्यकोपनिषद्में वासनाओंको जन्मका निमित्त माना गया है। 'तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च'—जब जीवात्मा परलोकमें जाने लगता है, तब विद्या, कर्म और पूर्वप्रज्ञा उसके पीछे-पीछे जाती हैं। यहाँ सभी प्रकारके विद्या और कर्म समझने चाहिए—विहित, प्रतिषिद्ध, अविहित और अप्रतिषिद्ध। ये दोनों चार-चार प्रकारके होते हैं। पूर्वप्रज्ञाका अर्थ है पहले जिन कर्मफलोंका अनुभव किया गया है उनकी वासना। वही वासना अपूर्व कर्मके आरम्भमें और कर्मविपाकमें अंग होती है। उस वासनाके बिना कोई भी न कर्म कर सकता न फलका उपभोग कर सकता है। अनभ्यस्त विषयमें इन्द्रियोंका कौशल उपपन्न होता है। कोई-कोई व्यक्ति जन्मसे ही चित्र आदि बनानेमें कुशल होते हैं। कोई-कोई सुगम कर्ममें भी अकुशल होते हैं। इन सबमें पूर्वप्रज्ञा ही निमित्त है। इसलिए कर्म, विद्या और पूर्वप्रज्ञा ये तीनों परलोकपथके पथिकके लिए पाथेय हैं। अगले जन्ममें ये ही साथ देनेवाले हैं, इसलिए इस जन्ममें मनुष्यको

जय वृन्दावनचन्द
नन्दनन्दन मनमोहन।
जय मुकुन्द रसकन्द
राधिका नयनामोदन।
पद अरविन्द अमन्द
हृदय मन्दिरमें धारो।
सुन्दर मन्दास्मित
दानी लीला विस्तारो॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन तीनोंका शास्त्रोक्त रीतिसे ही निर्माण करना चाहिए जिससे अग्रिम देहसंयोग और भोगोपभोग सुखप्रद बनें।

(६)

ये तीनों प्रकार उपासनाजन्य विद्यावासना, कर्मजन्य धर्माधर्म-वासना और पूर्वानुभवजन्य पूर्व-प्रज्ञाख्य वासना, देहान्तरपरिग्रहके समय स्वरूपतः स्थित नहीं रह सकतीं। इसीलिए शास्त्रमें कहा जाता है कि जैसे तृणजलूका उत्तराश्रयको ग्रहण कर पूर्वाश्रयका त्याग करता है; वैसे ही जीव भी मृत्युसे पूर्व वासनाओंके द्वारा शरी-रान्तरका साक्षात्कार करके तब इस शरीरसे फैली हुई वासनाओंका उपसंहार करता है। कारण भी सर्वात्मक है, प्राण भी सर्वात्मक हैं। उन्हींका आश्रय लेकर यह जीव अपने कर्म, ज्ञान और भावनाके अनुसार आध्यात्मिक और आधि-भौतिक परिच्छेद प्राप्त करता है। अर्थात् मानसिक व दैहिक स्थितियाँ प्राप्त करता है। उन्हींके अनुसार देहान्तरकी प्राप्ति होती है और प्राणोंकी वृत्ति संकुचित एवं विकसित होती है। वासनाके अनुसार ही आकृति मिलती है और प्राणोंके अनुसार गति, संकोच एवं विकास होता है। मच्छर, चींटी या हाथीके शरीर प्राप्त होनेका यही कारण है। यह बात श्रुति, भाष्य और युक्तिसे स्पष्ट सिद्ध होती है।

(७)

जैसे बृहदारण्यकोपनिषद्में वासनाओंका हरिद्रा रागसे साम्य बतलाया गया है, वैसे ही काठक, मुण्डक आदि उपनिषदोंमें उन्हें ग्रन्थिरूप भी कहा गया है। आचार्य शंकरने हृदयग्रन्थिको अविद्यावासना-राशि दृढ़ बन्धनरूप और कामके रूपमें कहा है, जो कि बुद्धिमें रहता है आत्मामें नहीं। भाष्यमें एक दूसरे स्थानपर कहा गया है कि जैसे मछली पकड़नेका जाल सूक्ष्म तन्तुग्रन्थियोंसे आबद्ध होता है, वैसे ही अन्तःकरण भी वासनारूप ग्रन्थियोंसे। भाष्यके स्वाध्यायसे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि वास-नाओंमें नील, पीत आदि रंग और ग्रन्थिरूपता सादृश्यके कारण अध्या-रोपित है, वास्तविक नहीं है। तथापि अन्तःकरणमें उसकी सम्भा-वनाके सम्बन्धमें युक्ति भी है।

छान्दोग्य उपनिषद्में स्पष्ट निरूपण है कि मन अन्नका विकार है। 'अन्नमयं सौम्य मनः यदणिष्ठं तन्मनः'—अन्नका जो सूक्ष्मतम अंश है उससे मन बनता है। भोजन किये हुए सात्त्विक, राजस, तामस अन्न एवं मधुर, कटु आदि रसोंका प्रभाव भी मनपर देखा जाता है। भगवान्ने गीतामें इसका विस्तारसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निरूपण किया है। अन्न पार्थिव है और पृथिवीमें तेजकी अनुगति होनेके कारण उसमें सभी प्रकारके रूप होने सम्भव हैं। ऐसी अवस्थामें तेजसे अनुगत पृथिवीसे बने अन्नके विकार मनमें और उसकी विकृति वृत्तियोंमें तथा वासनाओंमें सभी रूपोंका होना सम्भव है। इसी प्रकार वासनाओंका ग्रन्थिरूप होना भी युक्तियुक्त हैं; क्योंकि वासनाएँ रहती हैं हृदयपिण्डपुण्डरीक-समाश्रित मनमें और हृदयपिण्डमें प्राणाभिघातसे रेखारूप ग्रन्थियाँ विद्यमान रहती हैं। योगवासिष्ठमें कहा गया है कि वासना और प्राणस्पन्द परस्पर आश्रित हैं। यही कारण है कि उनके अनुसार चित्तबीज कभी बीज, कभी अंकुर बनता रहता है। वृत्तिलतापरिवेष्ठित चित्तवृक्षके दो ही बीज हैं—एक प्राणपरिस्पन्द और दूसरा दृढ़-वासना।

(८)

अब अगणित वासनाओंमें-से कुछका विवरण दिया जाता है। पहले विद्यावासनाको ही लीजिए। यह दो प्रकारकी होती है। एक सद्वस्तुको विषय करनेवाली और दूसरी असद् वस्तुको। विद्याजन्य वासनासे वस्तुका साक्षात्कार होता है जैसे आत्मजन्य विद्यासे आत्माका साक्षात्कार। मणि-माणिक्य, सोना-चाँदी आदिकी विद्यावासनासे उन-उन वस्तुओंका साक्षात्कार होता है। गान्धर्वशास्त्रके अभ्याससे स्वरोंका साक्षात्कार होता है। यह विद्या क्या है उपासना या ध्यान? प्रत्यय-का एकाभिमुख प्रवाह ध्यान है। इसीको निरन्तर सजातीय प्रवाह भी कहते हैं।

इस विद्यावासनामें इतना सामर्थ्य है कि यह असद्वस्तुको भी आकार दे दे, गुंजापुंजको अग्नि बना दे, मरुमरीचिकामें मन्दाकिनीका प्रत्यय करा दे। इसीसे किसी-किसीको भविष्यका ज्ञान हो जाता है। जैसे मेरी मृत्यु कब होगी। आज मेरा भाई आनेवाला है। इसी विद्याजन्य वासनाके प्रकर्षसे योगियोंको भी भूत-भविष्यका ज्ञान हो जाता है। 'न्यायमञ्जरी'में कहा है कि यह प्रतिज्ञान कभी-कभी किसीको भी हो सकता है। और यह प्रमाण भी होता है, क्योंकि इसका कारण दुष्ट नहीं है—इसमें कोई सन्देह भी नहीं है और इसका कोई बाध भी नहीं है। यह काकतालीय भी नहीं है, क्योंकि प्रमाणसिद्ध है।

(९)

अविद्यावासना क्या है? दूसरे दर्शनोंमें कहा गया है कि अनात्मामें आत्मख्याति ही अविद्या है। परन्तु अद्वैत-दर्शनमें चित्सुखीके अनुसार अविद्याका यह लक्षण है—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनादिभावरूपं यद्
विज्ञानेन विलीयते ।
तदज्ञानमिति प्राज्ञा
लक्षणं सम्प्रचक्षते ॥

अज्ञान अनादि भावरूप और विज्ञाननिवर्त्य होता है। अज्ञानके कार्य अनात्मामें आत्मख्यातिरूप प्रत्यय भी अज्ञान ही है। कहीं-कहीं वासनाओंको भी अज्ञान ही कहते हैं। इनमें पहली मूलाविद्या और शेष दो तूलाविद्या हैं। अद्वैत-दर्शनमें आत्मा वाङ्मनसागोचर और निर्धर्मक है। इसलिए आत्मविषयक सारेके सारे प्रत्यय अविद्याप्रत्यय ही हैं। मूलाविद्यासे अनात्मामें आत्मख्याति और उससे वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। सभी विभ्रम पूर्वानुभवजनित वासना-मूलक ही हैं। पूर्वानुभव चाहे भ्रम हो चाहे प्रमा। इसमें वेदान्तियोंका कोई आग्रह नहीं है। अविद्याप्रत्यय-जनित मैं और मेरा यह वासना ही प्रवृत्तिद्वारा धर्माधर्म उत्पन्न करके बन्धन बनती है, क्योंकि यह संसारका कारण है। इस अविद्याकी निवृत्ति होनेपर ही अपवर्गकी प्राप्ति होती है। यह सर्वसम्मत पथ है।

(१०)

अब कर्मवासनापर विचार करते हैं। कर्म तीन प्रकारके होते हैं। पहला विहित, दूसरा निषिद्ध और तीसरा न विहित और न निषिद्ध। इनमें तीसरेसे धर्माधर्म-वासनाकी उत्पत्ति नहीं होती; क्योंकि ये स्वाभाविक हैं और रागद्वेषादि क्लेशके विना ही होते हैं।

विहित कर्म धर्मजनक हैं। निषिद्ध कर्म अधर्मजनक हैं। 'न्यायकुसुमाञ्जलि'में उदयनाचार्यने कहा है कि माघ मासमें धानका खेत जोत देनेसे जैसे एक प्रकारकी विशेषता उत्पन्न हो जाती है, इसी प्रकार विहित एवं निषिद्ध कर्मोंसे भी एक विशेषता उत्पन्न हो जाती है। काम लोभ, मोह, क्रोध आदिके रूपमें स्थित राग होनेपर ही कर्मोंसे ही धर्माधर्मकी उत्पत्ति होती है, राग रहनेपर ही इनके फलस्वरूप जाति, आयु और भोग इन फलोंकी उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं। क्योंकि जीवन्मुक्तके कर्मसे अदृष्टकी उत्पत्ति नहीं होती। क्लेश पाँच हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

वागवानी

ग्रेजुएट : तुम्हारी वागवानीके तरीके बिलकुल गलत हैं, उस दरख्तसे पाँच सेर भी सेव मिल जायें तो मुझे ताज्जुब होगा।

बूढ़ा किसान : मुझे भी ताज्जुब होगा क्योंकि वह तो नाशपातीका पेड़ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन्हींकी उपस्थितिसे पाप और पुण्य-के कर्माशय बनते हैं। वे दो प्रकारके होते हैं दृष्टजन्मवेदनीय और अदृष्ट-जन्मवेदनीय। यदि मन्त्र, तपस्या और समाधिका तीव्र वेगसे अनुष्ठान किया जाय अथवा ईश्वर, देवता, महर्षि और सत्पुरुषोंका आराधन किया जाय तो उससे शीघ्र ही पुण्य-कर्माशयका परिपाक हो जाता है। इसी प्रकार यदि तीव्र क्लेशसे भीत, रुग्ण, कृपण, विश्वासी, सत्पुरुष और तपस्वियोंके प्रति बार-बार अपकार किया जाय तो पाप कर्माशयका भी तत्काल परिपाक हो जाता है। जैसे नन्दीश्वरकुमार तत्काल मनुष्यसे देवता हो गये। अथवा नहुष मनुष्य देवतासे बदलकर तत्काल साँप हो गये। नारकीय प्राणियोंमें दृष्टजन्म-वेदनीय कर्माशय नहीं होता। जिनके अविद्यादिक क्लेश क्षीण हो गये हैं, उनके अन्दर भी अदृष्टजन्मवेदनीय कर्माशय नहीं होता।

योगदर्शनकी वैशारदी टीकामें यह बात कही गयी है कि कर्मकी उत्पत्ति और कार्यकारी होनेमें अवि-द्यादि क्लेश ही मूल हैं। वहाँ आशय पदका अर्थ यह दिया गया है कि जिससे सांसारिक पुरुष देह-गेहादिमें सो जाते हैं अर्थात् मैं-मेरेका अभि-मान कर बैठते हैं। कर्मके आशय हैं धर्माधर्म। कामनासे काम्य कर्ममें प्रवृत्त होनेपर स्वर्गादि देनेवाला धर्म होता है, लोभसे दूसरेका धन अप-हरण करनेपर अधर्म। यदि मोहवश अधर्म, हिंसा आदिमें धर्मबुद्धि करके प्रवृत्त हुआ जाय तो वह भी अधर्म ही होता है। मोहसे धर्म नहीं होता। क्रोधसे धर्माधर्म दोनों ही होते हैं। जिस कर्माशयसे नरकादिकी प्राप्ति होती है उनके दृष्टजन्मवेदनीय कर्माशय नहीं हैं, क्योंकि मनुष्यादि शरीरसे निरय-यातनाका उपभोग सम्भव नहीं है।

योगभाष्यमें कर्माशय और उसके विपाक क्लेशमूलक हैं यह सिद्ध करके प्रश्न उठाया गया है—

दो रोटी और इतना काम ?

फर्रुखाबादी दण्डी स्वामी एक गाँवमें भिक्षाके लिए गये। एक वृद्धा स्त्रीने दो रोटी लेकर पहले अपने घरके बीमार पुरुष-पर घुमाया और बहूको लाकर उनके चरणोंमें डाल दिया। बोली—'स्वामीजी इसकी कोख बेटेसे भर दो!' फिर बोली—'मेरे बेटेकी आयु लम्बी कर दो।' इसके बाद वह दोनों रोटी स्वामीजीकी झोलीमें डालने लगी तब स्वामीजी बोले—'माँ, दो रोटीमें इतने काम नहीं हो सकते।' और बिना रोटी लिये ही वहाँसे चल पड़े।

सकाम व्यक्तिकी दी हुई भिक्षा भोजन करनेवालेमें भी कामनाका सञ्चार कर देती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१. क्या एक कर्म एक जन्मका कारण है अथवा एक कर्म अनेक जन्मोंका कारण हो सकता है ?

२. क्या अनेक कर्म अनेक जन्मके कारण हैं या अनेक कर्म एक जन्मके कारण होते हैं ?

इन सभी पक्षोंमें दोष दिखाकर यह सिद्धान्त निश्चित किया गया है कि अनेक कर्म एक जन्मके कारण हैं; इसलिए जन्म और मृत्युके बीचमें कर्माशयकी विचित्र स्थिति रहती है। उसमें कुछ प्रधान रहता है और कुछ गौण। मृत्युके समय सब एक ही घाटपर मिल जाते हैं और एक ही जन्म देते हैं। इसीसे आयु और भोग सम्पन्न होता है। यही कर्माशय जाति, आयु और भोगका कारण होनेसे त्रिविपाक कहा जाता है। यह कर्माशय जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त अर्थात् सम्पूर्ण एक जीवनमें रहता है। और अदृष्टजन्मवेदनीय ऐकभाविक कर्माशय त्रिविपाक होता है। परन्तु दृष्टजन्मवेदनीय कर्माशय त्रिविपाक नहीं होता। उसमें केवल एकविपाक भोग अथवा दो विपाक भोग और आयु होते हैं। अब उससे अगला जन्म नहीं मिलता।

जो संस्कार स्मृतिके हेतु हैं उन्हें वासना कहा जाता है और वे अनादिकालीन हैं। अदृष्टजन्मवेदनीय कर्माशय ऐकभविक नहीं होता। उसकी तीन गति होती है। अविपक्व कर्मका नाश हो जाता है या वह प्रधान कर्मके गौण होकर रहता है या प्रधान कर्मसे अविभूत होकर चिरकालतक रहता है। अविपक्व कर्मके नाशका अभिप्राय यह है कि तपस्या, स्वाध्याय आदिसे साध्य शुक्ल कर्माशयके उदयसे इसी जीवनमें कृष्ण कर्मका नाश हो जाता है। यह कर्मगति विचित्र एवं दुर्विज्ञान है। देश, काल निमित्तका अवधारण नहीं किया जा सकता। यह सब विस्तार मूल ग्रन्थमें ही देखना चाहिए।

(११)

अब पूर्वप्रज्ञा वासनापर विचार करते हैं। पहले कह चुके हैं कि जैसा जैसा अनुभव होता है उसीके अनुसार वासना बनती है। परन्तु अनुभवमें संशय या उपेक्षाका भाव हो, तो वासनाकी उत्पत्ति नहीं होती। अनुभव वासनासे स्मृति और धर्माधर्मकी उत्पत्ति होती है। यह बात स्मृति पहले कह चुके हैं। ईश्वरमें मिथ्याज्ञानजन्य वासना नहीं होती। इसलिए उसे धर्माधर्म नहीं होता। यह बात दिनकरीमें स्पष्ट कही गयी है। इसी न्यायसे जीवन-मुक्तिकी प्रवृत्तिसे भी धर्माधर्मकी उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वह ब्रह्मविद्यासे बाधित है। प्रवृत्तिके कारणभूता मिथ्याज्ञानकी वासना देह धारणार्थ अनुवृत्त होनेपर भी बाधित होनेसे अकिंचित्कर है। वह तो ऐसी ही है;

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जैसी जादूगरके द्वारा दिखायी हुई वस्तुओंके सम्बन्धमें वृत्तियाँ अथवा वासना। यदि ऐन्द्रजालिकके द्वारा दिखायी हुई वस्तुओंमें भी अपेक्षा हो तो हेय अथवा उपादेयकी कल्पना होकर वासनाकी उत्पत्ति होने लगती है। ब्रह्माकारवृत्ति सम्पूर्ण वासनाओंका नाश कर देती है—कतकरजके समान। ज्ञानीके प्रतिभास मात्र चित्तमें तात्कालिक संस्काररूप बन्धनकी प्रतीति होनेपर भी वास्तविक नहीं है, परन्तु अज्ञानी चित्तमें वह दृढ़ एवं अविच्छिन्न होती है।

वासनाएँ उद्बुद्ध कैसे होती हैं? जिस जातिकी विद्या-अविद्या या अनुभव है, उसी जातिके उद्बोधक भी होते हैं। न्यायमंजरीमें कहा गया है कि प्रायः भ्रमके समय स्मृतिमें आरूढ़ आकार ही भासता है। स्मृतिके कारण देश, काल, वस्तुके भेदसे भिन्न-भिन्न होते हैं, जैसे सादृश्य विज्ञान काम शोकादि भाव, दर्शनाभ्यास न होना, नेत्रका अन्धकार, निद्रा, चिन्ता, धातुविकृति ये सब स्मृतिके कारण होते हैं। जहाँ कोई दृष्ट कारण न हो वहाँ अदृष्ट कारण समझना चाहिए।

शास्त्रोंमें ऐसा भी वर्णन मिलता है कि माता-पिताकी वासना सन्तानमें संक्रान्त होती है। श्रीमद्भागवतमें विदुरजीके सम्बन्धमें कहा गया है कि तुम बादरायण व्यासके वीर्यसे उत्पन्न हुए हो, इसलिए सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिको अनन्य भावसे हृदयमें धारण करना तुम्हारे लिए कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अभिप्राय यह है कि व्यासने भी भगवान्‌को अनन्य भावसे धारण किया, इसलिए उनके पुत्रने भी अनन्यभावसे धारण किया। अतः विदुरमें यह आश्चर्य नहीं है; किन्तु उनके अतिरिक्त किसीमें यह बात हो तो आश्चर्य समझी जायगी। महाभारतमें भी कहा गया कि पराशर पैतृक संस्कारसे ही अपने पिताके समान वेदोच्चारण करते हैं। मनुस्मृतिमें भी यह प्रसङ्ग आता है कि माता और पिताके संस्कारसे संक्रान्त वासनाओंको दूर करनेके लिए वैदिक संस्कार करना आवश्यक है। जातकपारिजात नामक ज्योतिष-ग्रन्थमें माता-पिताके पापकर्मसे बालारिष्टका वर्णन है। उत्पन्न शिशुके चार वर्षतक माताके और चार वर्षतक पिताके कर्मफल भोगना पड़ता है। पिताके बीजमें उसके सारे अवयव सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रूपमें रहते हैं जैसे बीजमें वृक्षके अन्तःकरणका अंश भी बीजमें रहता है। क्योंकि अन्नमय होनेके कारण मन भी सावयव है। पारस्करगृह्यमें उद्धृत श्रुति पिताके प्रत्येक अंगसे और हृदयसे भी सन्तानकी उत्पत्ति मानती है। पिता-माताके साथ ही दादा-दादी और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाना-नानीके संस्कार भी संक्रान्त होते हैं। वंशानुक्रमसे भी वासना होती है। और तो क्या ऋत्विज आदिके द्वारा संकल्पित पुंसवन जल, चरु और महात्माओंके द्वारा दिये हुए प्रसादसे भी वासनाका संक्रमण होता है। क्योंकि मन अन्नमय होनेसे सावयव है और वह इन्द्रिय प्रणालीसे संकल्पके रूपमें निकलकर बाहर जा सकता है। यह भी कह सकते हैं कि संकल्पजन्य अदृष्ट वासनाका ही इस प्रकार संक्रमण होता है। योगीगण एक साथ अपने अनेक शरीरोंमें जीवनका संचालन कर सकते हैं। उनका एक मुख्य मन अपने ही द्वारा निर्मित अन्य मनोंका संचालक होता है।

यदि वासना अन्न-जन्य सावयव मनका विकार न होती और वह एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भेजी न जा सकती, तो योगीके संकल्प करनेपर व्याघ्र मनकी हिंसा-वासना शान्त होकर अहिंसा-वासनाका उदय नहीं हो सकता। ऐन्द्रजालिक कभी इसी रीतिसे अपने संकल्पसे दूसरेके हृदय, संकल्प और दृष्टिको प्रभावित करता है। लोकमें प्रसिद्ध है और कात्यायन-का वार्तिक भी है—'माँ पर बैल, बापपर घोड़ा, न बहुत तो थोड़ा-थोड़ा' यह भी वासना संक्रमणका ही उदाहरण है।

(१२)

अब वासनाओंके विनाशपर विचार करते हैं। अविद्या-वासनाओं का नाश आत्म-विद्यासे होता है। न्याय शास्त्रकी रीतिसे षोडश पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे निश्रेयसका अधिगम होता है। और उस क्रममें मिथ्याज्ञानका नाश ही पहले पहल कहा गया है। तथापि आत्मासे इतर पदार्थोंका ज्ञान आत्म-ज्ञानसे मिथ्या ज्ञानकी निवृत्तिमें सहकारी ही होते हैं।

— श्रोता —

एक संगीत-सम्मेलनमें एक महिला अपना गाना प्रस्तुत कर रही थीं। अच्छी भीड़ थी। पीछे बैठे एक श्रोताको उनका गाना पसन्द नहीं आया, समीप बैठे श्रोतासे बोले—यह तो बहुत गला फाड़ रही है, एकदम चिग्घाड़ रही है, कौन है यह ?

समीपस्थ श्रोता : यह तो मेरी पत्नी है।

श्रोता : माफ कीजियेगा, आवाज तो इनकी ठीक ही है, यह गीत ही कुछ बेढंगा है, जिसे इन्हें गाना पड़ रहा है। पता नहीं किस नौसिखियेने यह लिखा है ?

पड़ोसी श्रोता : लिखा तो मैंने ही है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्योंकि विद्या और अविद्या जब समान विषयक होती है तभी उसमें नाश्यनाशक भाव होता है।

सांख्यके मतमें सत्त्वपुरुषान्यताख्याति ही विद्या है। आत्मा और अनात्माके अविवेकके कारण संसार है, और दोनोंका ठीक-ठीक विवेक हो जाना विद्या है, इसीसे अविवेककी निवृत्ति होती है। अद्वैतियोंके मतमें अधिष्ठान आत्माका साक्षात्कार ही विद्या है रज्जु आदि विषयक जो अविद्याकी वासनाएँ हैं, उनकी भी अधिष्ठान-साक्षात्कारसे ही निवृत्ति होती है। विषेश धर्मदर्शनका उपयोग अधिष्ठानके साक्षात्कारमें ही है। जहाँ-जहाँ अधिष्ठान साक्षात्कार है वहीं-वहीं अविद्या वासनाकी निवृत्ति है। जहाँ वह नहीं है वहाँ निवृत्ति भी नहीं है। जितने ही ज्ञान हैं उतने ही अज्ञान हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार इस रीतिसे अनेक अविद्या वासना होनेके कारण अधिष्ठान साक्षात्कारसे एकका ही नाश होता है। इस कारण रज्जुमें पुनः सर्पादिका विभ्रम सम्भव है।

योगवासिष्ठमें अविद्याक्षयके लिए दूसरे उपाय भी दिये गये हैं।

यावत्किञ्चिदिदं दृश्यं
साविद्या क्षीयते च सा।
आत्मभावनया ब्रह्मन्
आत्मासौ कीदृशः स्मृतः।

दृश्य मात्र ही अविद्या है। आत्मभावनासे इसका क्षय होता है। यह आत्मा कैसा है? अविद्या और उसकी वासनाओंकी विरोधिनी आत्मभावना ही है। निःसङ्ग व्यवहार और शरीरकी नश्वरताका दर्शन वासनाके विरोधी हैं। पदार्थोंके संयोग और वियोगसे हर्ष, अमर्ष एवं विकार उत्पन्न करनेवाली मलिन वासना ही संग है। उसका त्याग निःसंगता है। विवेकसे भी वासनाओंकी निवृत्ति होती है।

विद्या वासना जिनका वर्णन पहले आ चुका है और पूर्व प्रज्ञा-वासना इन दोनोंका नाश अनेक प्रकारसे होता है। विशेष समय आने पर अदृष्टवश एवं रोग आदिके द्वारा भी इनकी निवृत्ति देखी गयी। दूसरे विषयोंमें उत्कट राग तथा उसके कारण होनेवाली सतत साभिनिवेश प्रवृत्ति रूप विषयान्तरासक्ति भी उन वासनाओंको मिटा देती है। अनभ्यास रूप प्रमाद भी वासनाओंके निवर्त्तक होते हैं।

तत्त्व-साक्षात्कारसे जन्मजन्मार्जित सभी संचित कर्मोंकी वासना मिट जाती है प्रारब्धको छोड़कर। जैसा कि मुण्डकोपनिषद्में कहा गया है :—

'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि'

गीतामें भी यही बात दोहरायी गयी है। 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि'। तपस्या, स्वाध्याय, जप, संध्यावन्दन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आदि नित्यकर्म इनसे शुक्ल अदृष्टकी उत्पत्ति होकर कृष्ण संचित कर्मोंका क्षय हो जाता है; जैसा कि कहा गया है। कर्मोंके द्वारा पाप रूप कसायका परिपाक अर्थात् दाह होनेपर ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है। प्रायश्चित्तसे और उसके न करनेपर भोगसे भी कर्मवासनाओंका क्षय होता है। यह जो कहा गया है कि विना भोगके कर्मका क्षय नहीं होता है वह केवल प्रारब्ध कर्मके सम्बन्धमें ही है। प्रवल पुण्य कर्म करनेपर प्रारब्ध प्रतिबद्ध हो जाता है, उसका नाश नहीं होता। दुर्वल पाप वासनाका केवल पश्चात्तापसे ही नाश हो जाता है।

सभी लौकिक वैदिक निष्काम कर्म भगवान्‌के प्रति अर्पित कर देनेसे सम्पूर्ण पापोंका क्षय हो जाता है; जैसा कि भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—'तत्कुरुष्व मदर्पणम्' साथ ही 'शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्म-बन्धनैः'।

'निष्काम कर्म भी अपना फल देते हैं'—ऐसा सोचनेका कोई कारण नहीं; क्योंकि शास्त्रमें कहा गया है कि फल-कामनावाला पुरुष ही कर्मका अधिकारी है। जहाँ फल-कामना नहीं है वहाँ कर्ता अनधि-कारी है। शास्त्रीय रीतिसे अनधि-कारी द्वारा किया हुआ कर्म फलप्रद नहीं होता। इस सम्बन्धमें योग-वासिष्ठके कुछ वचन उद्धृत किये जाते हैं :—

शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां
वहन्ती वासनासरित्।
पौरुषेण प्रयत्नेन
योजनीया शुभे पथि॥

यह वासना-नदी शुभ-अशुभ दोनों ही मार्गोंसे प्रवाहित होती है। मनुष्यको अपने प्रयत्नके द्वारा किसी शुभ मार्गमें ले चलना चाहिए।

यत्तु चंचलताहीनं
तन्मनोऽमृतमुच्यते।
तदेव च तपः शास्त्रं
सिद्धान्तो मोक्ष उच्यते॥

जो मन चंचलतासे रहित है उसे अमृत कहते हैं। उसी मनके दूसरे नाम हैं तपस्या, शास्त्र, सिद्धान्त और मोक्ष।

मम पुत्रा मम धन-
मयंसोहमिदं मम।
इतीयमिन्द्रजालेन
वासनैवाधिवल्गति॥

पुत्र मेरे हैं, धन मेरा है और मैं ऐसा हूँ—वैसा हूँ, यह मेरा है। इन सभी रूपोंमें वासना ही अपने इन्द्रजालका आडम्बर दिखा रही है।

वासनातन्तुबद्धोऽयं
लोको हि परिवर्तते।
सा प्रवृद्धाऽतिदुःखाय
सुखायोच्छेदमागता॥

वासनाके सूतसे बँधकर यह लोक कठपुतलीके समान नाच रहा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैं चार वेदका ज्ञाता हूँ

एक समृद्धिशाली पुरुषने घोषणा की कि मैं चारों वेद जाननेवाले चतुर्वेदविद् ब्राह्मणको गोदान, स्वर्णदान, भूमिदान करना चाहता हूँ। यह सूचना पाकर एक मूर्ख व्यक्ति उनके पास पहुँच गया और बोला—'मैं यह जानता हूँ कि वेद चार हैं, इसलिए आपके द्वारा घोषित दानका अधिकारी मैं ही हूँ।' उन दाता सज्जनको उसकी बात सुनकर हँसी आ गयी; उसे कुछ नहीं दिया। ठीक इसी प्रकार जो 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्योंसे परिचित है; किन्तु विवेक-वैराग्यादि बहिरङ्ग साधन एवं श्रवणादि रूप अन्तरङ्ग साधनसे रहित हैं तथा 'तत्पदार्थ,' 'त्वं पदार्थ'का शोधन और लक्ष्यार्थकी एकताके ज्ञानसे अज्ञान और तत्कार्यको बाधित नहीं कर देता; वह केवल महावाक्यके उच्चारण मात्रसे मुक्त नहीं हो सकता। जैसे वेदोंकी संख्याका ज्ञान होनेसे और उसके विशेष स्वरूप और अर्थका ज्ञान न होनेपर मूर्ख व्यक्ति उसके फलसे वञ्चित है, वैसे ही अस्ति, भाति, प्रियरूप आत्माको नाम-रूपका निषेध करके अद्वितीय ब्रह्मरूप अनुभव किये बिना मुक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी अभिप्रायको प्रकट करनेके लिये इस चतुर्वेदविद् न्यायका प्रयोग प्राचीन ग्रन्थोंमें होता है। ●

है, वह बढ़ती है तो अत्यन्त दुःख मिलता है; वह टूट जाती है तो सुखकी प्राप्ति होती है इत्यादि।

संसार वासना और मोहवासना मनुष्यको आशाके फन्देमें फँसा देती है। इसीसे मनुष्य दीन-हीन हो जाता है। संसार एक समुद्र है और उसमें वासनाका जल भरा हुआ है। जो प्रज्ञाकी नावपर आरूढ होते हैं वे पार कर जाते हैं। दूसरे दुःखी होते हैं। वस्तुतः चित्त और वासना शब्द पर्याय ही हैं। इसलिये चित्तका निरोध करनेपर भी उत्थान होता है परन्तु अधिष्ठान ज्ञानसे इसकी नित्य निवृत्तिका बोध हो जानेपर बाध होता है।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रसका स्वरूप : एक दृष्टि

[पण्डितप्रवर श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री]

साहित्यविभागाध्यक्ष : वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालय

• ★ •

मानव जीवनमें जैसे शरीरका पोषण करनेके लिए विविध प्रकारकी भोज्य वस्तुओंकी अपेक्षा होती है वैसे ही नेत्रादि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धिके पोषणके लिए भी साधनोंकी अपेक्षा होती है। जगन्नियन्ता परमेश्वर भी जब प्राणियोंकी सृष्टिका संकल्प करते हैं, तब पहले जीवन-धारणके लिए दुग्ध आदि अनेक प्रकारकी उपयोगी वस्तुओंकी सृष्टि करके ही बादमें प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं। इस सृष्टिमें किसी-किसीका ऐसा मत है कि आहारके लिए ही जीवन है और किसी-किसीका मत है कि जीवनके लिए आहार है। यदि दोनोंपर विचार करें तो परिणाममें बहुत-से भेद मिलेंगे। जो लोग पहली कक्षामें हैं, वे प्रधानरूपसे शरीर और इन्द्रियोंका ही संवर्द्धन करते हुए भौतिक फलके लाभके लिए ही चेष्टा करते हैं। दूसरी कक्षामें लोग मन और बुद्धिका पोषण करते हुए आध्यात्मिक फलकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करते हैं। जब शरीर आदिकी प्रधानता होती है, तब मन-बुद्धि सहकारी होते हैं। पहली कक्षामें जड़ विज्ञानका आविष्कार ही फल है, दूसरी कक्षामें चेतन विज्ञानका आविष्कार।

पहला पक्ष सान्त है और राग-द्वेषके मूलभूत भेद-भावसे युक्त है। दूसरा पक्ष अनन्त और सर्वोपरि है। इसमें किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं है। पहले पक्षमें जन्म और मरण है, दूसरेमें दोनों नहीं हैं। पहला आगे देखता हुआ चलता तो है; परन्तु फिर पीछे लौट आता है। दूसरा अन्तर्मुख होता हुआ आगे बढ़ता है और फिर लौटता नहीं। पहला मृत्युसे डरता है, दूसरा नहीं। पहला प्रतिबिम्ब चाहता है, दूसरा बिम्ब। पहलेका आधार राग-द्वेषादि है, दूसरेका शम-दम आदि। पहला क्रूर-कर्मा हिंसक होता है, दूसरा अहिंसक और सदाचारी। पहला प्रवृत्तिकी ओर चलकर गिर जाता है, दूसरा निवृत्ति-परायण होकर स्थिर रहता है। पहलेके चित्तमें अशान्ति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहती है, दूसरेके चित्तमें परम शान्तिका अनुभव होता है। अपने-अपने बुद्धि-कौशलसे भिन्न-भिन्न प्रकारके आणविक पदार्थोंकी उत्पत्ति होते रहनेपर पहलेको शान्ति कहाँ मिलेगी ! उसके लिए राग-द्वेष आदिकी उत्पत्ति स्वाभाविक ही है। नित्य निरतिशय पदार्थके आविष्कारके समय शम-दमादि सम्पत्तिकी समृद्धि भी स्वाभाविक ही है।

हमारे प्राचीन महामनस्वी भारतीय मनीषी जीवन-धारणके लिए केवल कन्द-मूल आदिका सेवन करते थे और भारतकी जीवनसुधा वेदोंका निर्मन्थन करके अपनी-अपनी बुद्धिकी विशदतासे भिन्न-भिन्न प्रकारके दर्शन-शास्त्रोंका निर्माण करते थे। उनके द्वारा प्रवर्तित दर्शन बुद्धिके पोषक तत्त्व हैं। यह हमारे पूर्वजोंका अनुभव है कि इन दर्शनोंका सेवन करनेसे परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। इस बातमें किसीका भी मतभेद नहीं हो सकता कि जीवित मनुष्यके लिए शान्ति परमावश्यक है। स्वयं प्रकृतिने भी मनुष्यके लिए रात्रि नामकी एक वस्तु कल्पित की है। यदि दिन और रातका विभाग न होता तो जगत्का व्यवहार ही सिद्ध न होता। अनवरत रूपसे विभिन्न वैषयिक कर्मोंमें संलग्न शरीर और इन्द्रियोंके लिए कभी विश्राम भी आवश्यक होता है। इसीसे रात, और रातमें निद्रा यह विभाग बना है। स्वप्नमें भी इन्द्रियोंका व्यापार तो नहीं रहता; किन्तु मन शान्त नहीं बैठता। इसलिए उसको विश्रामके लिए सुषुप्ति है। इस अवस्थामें मनुष्यको परम सुखकी प्राप्ति होती है, यह स्व-प्रत्यक्ष है। इहसुखको जाग्रत् अवस्थामें भी प्राप्त करनेके लिए ऋषियोंने प्रभु-

गोदमें सो सकते हो

एक बार माँ श्री आनन्दमयीका दर्शन करनेके लिए प्रसिद्ध देशभक्त श्री जमनालाल जी बजाज आये। उन्होंने माँसे पूछा कि माँ, क्या ? मैं तुम्हारी गोदमें सो सकता हूँ ?

माँने तुरन्त उत्तर दिया—'जब 'माँ' कह दिया तब प्रश्न कहाँ रहा ? तुम अवश्य सो सकते हो।'

और श्री जमनालालजी थोड़ी देरके लिए माँकी गोदमें सो गये। ध्यान देने योग्य है कि यदि माँमें स्त्रित्वका अभिमान होता तो ऐसी स्वीकृति नहीं मिल सकती थी।

—श्री जमनालाल बजाजकी धर्मपत्नी श्रीमती जानकी बजाज द्वारा लिखित एवं हिन्दुस्तानमें प्रकाशित एक संस्मरणके आधार पर।—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्मित शब्दोंमें दर्शन, सुहृत्सम्मित शब्दोंमें पुराण, और कान्तासम्मित शब्दोंमें काव्य-नाटक बनाये हैं। ऋषि और कवि समान श्रेणीके हैं। दर्शनसे ही ऋषि होता है। विचित्र भावों और संस्कृतिके तत्त्वोंका विज्ञान दर्शन है। ऐसा दर्शन श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे प्राप्त होता है। ऋषियोंने जैसे इन तीनोंका आश्रय लिया है वैसे ही कवियोंने भी। जैसे कि भट्ट तौतने कहा है—

नानृषिः कविरित्युक्त-
मृषिश्च किल दर्शनात्।
विचित्रभावधर्मांश-
तत्त्वप्रख्या च दर्शनम्॥
स तत्त्वदर्शनादेव
शास्त्रेषु पठितः कविः।
दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ
रूढा लोके कविश्रुतिः॥

यही कारण है कि सांख्य, न्याय, मीमांसा आदि शास्त्रोंके समान साहित्य भी 'अलंकारशास्त्र', 'नाट्य-शास्त्र' इस प्रकार शास्त्र नामसे प्रसिद्ध हुआ। ठीक ही है, हित-युक्तको सहित कहते हैं और सहितका भाव ही साहित्य है। सबका अपना आत्मा ही हित है; क्योंकि वह निरतिशय प्रेमास्पद है। काण्वशाखाध्यायी स्पष्ट रूपसे समाम्नान करते हैं कि आत्मतृप्तिके लिए सब प्रिय होता है, ऐसी निरतिशय प्रेमास्पद वस्तुका प्रतिपादन करनेके लिए जैसे दूसरे शास्त्र प्रवृत्त हुए हैं वैसे साहित्य भी। अवश्य ही इतनी विशेषता है कि दूसरे शास्त्र आदेशके स्वरमें पथका अंगुल्यानिर्देश करके निवृत्त हो जाते हैं, निर्दिष्ट पथपर चलनेका प्रयत्न हमें ही करना पड़ता है; परन्तु साहित्यशास्त्र सहृदय पुरुषका हाथ पकड़कर बहुत दूरतक अनुभवके मार्गपर ले चलता है और इतना ही नहीं, रसाम्भोधिमें निमज्जित भी कर देता है। यद्यपि इस अलौकिक अवस्थामें वह सहृदय पुरुषोंको चिरकालतक अवस्थित नहीं कर सकता, रस-सामग्री समाप्त होनेपर उन्हें इस लौकिकी अवस्थामें आना ही पड़ता है तथापि इस प्रकार बार-बार अनुभव करनेसे कालान्तरमें अन्तर्मुखता लाभके लिए बहुत-से अवसर प्राप्त होते हैं, यही साहित्यका वैशिष्ट्य है। जैसे सारे दिन क्लेशसाध्य छोटे-बड़े काम करके परिश्रान्त कोई साध्वी प्रेयसी गृहागत प्रियतमको मधुर सरस वचन-भोजन आदिसे सन्तृप्त करती है, कुपथगामीको उससे निवृत्त करती है, प्रेमपूर्ण चितवन, मनोहर स्पर्श, भुजसञ्चालन, भ्रूविक्षेप आदि विविध हाव-भावसे उसको आनन्दित करती है; उसी प्रकार यह साहित्य विद्या निरन्तर दुःखबहुल नश्वर संसारके क्लेशोंसे आक्रान्त सहृदय व्यक्तिको अपनी ओर आकृष्ट करके कान्ता-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्मित शब्दार्थद्वारा उसके श्रवण और नयनमें सुधा-विन्दुओंका आसेचन करती है और उसे सन्मार्गगामी बनाकर परम शान्ति प्रदान करती है। इसी कारण अलंकारशास्त्ररूपी भवनके प्रधान स्तम्भ मम्मटाचार्य काव्यका प्रयोजन इस प्रकार बतलाते हैं कि काव्यसे यश और अर्थकी प्राप्ति होती है, अमङ्गलका नाश होता है, संस्कृति और व्यवहारका परिज्ञान होता है और अन्ततः स्वरूपमें अवस्थिति होती है। श्रव्य-काव्यके पठन-श्रवण और दृश्य काव्यके दर्शनसे इस प्रयोजनकी सिद्धि बताकर उन्होंने काव्यके असाधारण गौरवका उद्घोष किया है—

शब्दार्थौ मूर्तिराख्यातौ
जीवितं व्यङ्ग्यवैभवम्।
हारादिवदलङ्कारा-
स्तत्र स्युरुपमादयः॥
श्लेषादयो गुणास्तत्र
स्वभावा इव रीतयः।
शोभामाहार्यिकीं प्राप्ता
वृत्तयो वृत्तयो यथा॥
पदानुगुण्यविश्रान्तिः
शय्या शय्येव संमता।
रसास्वादप्रभेदास्स्युः
पाकाः पाका इव स्थिताः॥
प्रख्याता लोकवदियं
सामग्री काव्यसम्पदः।

काव्यलक्ष्मीकी मूर्ति हैं शब्द और अर्थ, व्यंग-वैभव जीवन है, उपमा आदि हार आदिके समान अलंकार हैं, श्लेष आदि गुण हैं, रीतियाँ स्वभाव हैं, आहार्य शोभासे युक्त वृत्तियाँ वृत्ति है। चरणानुगुण विश्रामरूप शय्या है। रसास्वादके प्रभेद पाक पाक हैं और काव्य-लक्ष्मीकी लौकिक सामग्रीके समान ही सामग्री प्रख्यात है।

इस प्रकार आलंकारिक विद्वान् काव्यकी लोकानुरूप सम्पत्तिका बोधन कराते हुए भी काव्यजीवन व्यंग्यकी अलौकिकताको व्यवस्थापित करते हैं। जैसे किसी व्यक्तिको किसी विश्वसनीय श्रेष्ठ पुरुषने बताया हो कि इस महलमें कोई लोकप्रिय कोट्यधीश समर्थ अथवा राजा निवास करता है तो वह उससे अपना प्रयोजन सिद्ध करनेके लिए अंगुल्यानिर्दिष्ट मार्गका अवलम्बन लेकर महलके द्वारपर पहुँच जाता है। द्वारपालके रोकनेपर वह उसीको स्वामी समझ बैठता है और उसीके सहारे अपना अभीष्ट प्राप्त करता है। दूसरा व्यक्ति उसे द्वारपाल पहचानकर आगे बढ़ता है और बहिरंग सेवकको ही स्वामी समझकर अपना अभिलाष पूर्ण करता है। तीसरा उसके अन्तरंग कार्यकर्ततक पहुँचकर अपना मनोरथ पूर्ण करता है। चौथा अङ्गरक्षकतक पहुँच जाता है और अपनी इच्छा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूर्ण करता है। परन्तु कोई-एक बुद्धिमान् साक्षात् स्वामीके पास पहुँचकर सफलमनोरथ होता है। यह बात लोकप्रसिद्ध है। ठीक इसी प्रकार आलंकारिक विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट पथपर निर्द्वन्द्व सञ्चरण करते हुए सत्पुरुष 'शब्द ही काव्य है अर्थ नहीं' ऐसा निश्चय कर बैठते हैं। कोई-कोई 'शब्द और अर्थ' दोनोंको ही काव्य मानते हैं। किसीका मत है कि अलंकार ही काव्यकी आत्मा है और कुछ नहीं।

इसी प्रकार कोई गुण, कोई रीति, कोई रस तथा कोई ध्वनिकी ही काव्यताका प्रतिपादन करते हैं और दूसरे मतोंका खण्डन करके अपने लक्ष्यको सिद्ध करते हैं। इनमें भी कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि आस्वादका विषय रस अनुकार्य राम, दुष्यन्त आदिमें ही प्रतीत होता है। किस-किसीका कहना है कि अनुकर्ता नटमें ही रसकी प्रतीति होती है। दूसरे विद्वानोंका ऐसा कथन है कि सहृदयके हृदयमें ही रसकी प्रतीति होती है। इस प्रकार विविध पद्धतियाँ हैं। यह रीति दार्शनिकोंको भी मान्य है। वे भी शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और इनसे अतिरिक्त अहं-पदवाच्य जीव और ईश्वरको पृथक्-पृथक् आत्मरूपसे सिद्ध करते हैं और उनका दर्शन प्रख्यात है। यद्यपि ये दार्शनिक परस्पर एक दूसरेके मतका अनुसरण नहीं करते तथापि उनका और आलंकारिकोंका भी यह मत

पहले कौन ?

(अनन्त श्री सीताराम शरणजीके मुखारविन्दसे)

श्री अवधधाममें एक विरक्त भगवत्प्रेमी सन्त रहते थे। उन्होंने स्वयं एक नाटक लिखा। वे प्रति वर्ष उसका अभिनय करवाते थे। उसमें एक दृश्य था—चित्रलेखा द्वारकासे पलंगपर अनिरुद्धको लिये हुए उषाके अन्तःपुरमें उतरती है। अनिरुद्ध उठते हैं; किन्तु उषा उनकी ओर न जाकर दौड़ती है और चित्रलेखासे लिपट जाती है। नयनोंमें अश्रु, अंग-अंगमें पुलक, कण्ठ गद्गद। चित्रलेखा कहती है—'जा ! अपने प्रियतमसे मिल ! मेरे पास क्यों ?'

उषा कहती है—'प्रियतमसे भी बड़ा उनसे मिलनेवाला। पहले तुम, पीछे प्रियतम।'

बस, इसी दृश्यको देखनेके लिए वे पूरे नाटकका आयोजन करते थे। इसका सार यह है कि गुरु गोविन्दसे भी बड़ा है। ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वथा नहीं है कि इस मतभेदसे मनुष्योंको चित्तविभ्रम हो जाय, वे आपसमें विवाद करें, राग-द्वेष करके परस्पर निन्दा करें, उन्हें इष्ट वस्तुकी प्राप्तिका मार्ग निश्चित न हो और समय व्यर्थ जाय। व्यापारी अपनी दूकानमें विक्रयके लिए नाना प्रकारकी विरुद्ध और अविरुद्ध वस्तुओं-को फैलाकर रखता है तो उसका यह उद्देश्य सर्वथा नहीं होता कि ग्राहक इन वस्तुओंको देखकर आपस-में लड़ाई-झगड़ा करें। विरुद्ध वस्तुओंको फैलाना वैमनस्य उत्पन्न करनेके लिए नहीं माना जाता। विरुद्ध-अविरुद्ध सब प्रकारकी वस्तुओं-को अनुभव करके जिसे जो जंचे वह उसे ग्रहण करे यह लौकिक स्थिति है। मनकी शान्तिके लिए समदृष्टि ही उपयोगी है, विषम नहीं; क्योंकि विषम दृष्टि कौवेकी है और तुम्हें वैसा नहीं होना है। हंसकी दृष्टि समान है और वही अनुसरण करने योग्य है। इसीसे क्षीर-नीर-विवेकके समान वस्तुतत्त्वका विवेक होता है। विवेकसे मनकी शान्ति होती है और शान्तिसे ही परम प्रबोध होता है। यह दार्शनिक और आलंकारिक दोनोंका ही आशय है—

शमार्थं सर्वशास्त्राणि
निर्मितानि मनीषिभिः।
य एव सर्वशास्त्रज्ञ-
स्तस्य शान्तं मनः सदा॥

विद्वानोंने शान्तिके लिए ही सब शास्त्रोंका निर्माण किया है। जो सब शास्त्रोंका ज्ञाता है, उसका मन सदा शान्त रहता है। इस वचनके द्वारा भगवान् व्यास सगौरव शास्त्र-कारोंका भाव प्रकट करते हैं।

विभाव, अनुभाव और सञ्चारी-भावके संयोगसे रसकी निष्पत्ति होती है। यह भरत मुनिका सूत्ररत्न है। विमर्शक शास्त्रकार इसीके आधारपर अपने-अपने मत प्रकट करते हैं, जैसे रत्नपरीक्षक रत्नोंके सम्बन्धमें अपनी राय प्रकट करते हैं। रत्नतत्त्व-परीक्षकोंका यह स्वभाव ही है कि एक जानकार जिस रत्नके बारेमें जैसा निश्चय करता है, वैसा ही दूसरा नहीं करता, क्योंकि स्वभाव और मूल्य सबको एक सदृश नहीं ज्ञात होते। निर्णयमें न्यूनाधिक भाव हो ही जाता है। निर्णयके प्रकारका भेद ही न्यूनाधिक भावके प्रति निमित्त है, वस्तुतत्त्व नहीं। वह तो सदा एक रूप ही है। प्रकारभेदसे ही उनका परस्पर भेद होता है, उनका वस्तुसे कोई विरोध नहीं होता। कोई-कोई पहले आमका रस चूस लेते हैं और छिलका-बीज फेंक देते हैं। कोई छिलका निकालकर फल खा लेते हैं, फिर गुठली फेंकते हैं। कोई काटकर छिलकेसहित फलका रसास्वाद करके फिर बीजको फेंक देते हैं। इस प्रकार प्रक्रियाभेद होनेपर भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आस्वाद्य वस्तुमें कोई भेद नहीं होता। इसी प्रकार काव्योंमें रसास्वादके प्रकारमें ही विद्वानोंका मतभेद है, आस्वाद्य वस्तुमें नहीं। काव्योंमें रसास्वादके कर्ताओंकी गिनती है तीन—

१. अनुकार्य राम आदि
२. अनुकर्ता नट आदि
३. सामाजिक और सहृदय

मीमांसा-सम्प्रदायानुयायीके रूपमें प्रसिद्ध भट्ट लोल्लट आदि 'अनुकार्य राम आदिमें रस है' ऐसा मानते हैं। दशरथनन्दन राम कुमार-अवस्थासे ही राज्यभ्रंश, वनवास, पितृवियोग, निशिचर - पीड़ा, सीता - वियोग, वानर-सख्य, भीषण संग्राम आदिसे होनेवाली दुःख - परम्परासे निरन्तर आक्रान्त रहे और शोक-संतापका अनुभव करते रहे। यह कथा-वस्तु वाल्मीकिके द्वारा वर्णित है यह हम सब जानते हैं। अन्ततः कथाका परिणाम भी जानते हैं। जो लोग इस कथावस्तुको पढ़ते-सुनते या नाट्य वस्तुमें देखते हैं, आज भी उनका हृदय द्रवित हो जाता है—शरीर काँपने लगता है, रोमाञ्च होता है, आँसू बहने लगते हैं, रावण आदिके प्रति निन्दाका भाव, राम आदिके प्रति स्तुतिका भाव स्वभावसे ही उत्पन्न होने लगता है। यह बात सभी सुहृदयोंको प्रत्यक्ष है। यह एक कथा ही तो है, आजके युगमें कहाँ राम कहाँ सीता? पढ़ने-देखने-सुननेवालोंको भी यह निश्चित ही है कि हम लोग अपने घरमें या नाटकशालामें बैठे हैं। ऐसी अवस्थामें इन उत्तम भावोंकी उत्पत्ति कहाँसे होती है? ये कहाँसे आते हैं? कहना पड़ेगा कि यह कुशल कवि, प्रवचनकार अथवा नटकी अतिशय निपुणता ही है कि जिससे हम ऐसी दशामें पहुँचा दिये गये। आज वे कवि नहीं हैं, उनके काव्य हैं और उनके प्रवक्ता और अभिनेता नट हैं, वे ही हमें रुलाते हैं और हर्षित करते हैं। शब्दार्थमय काव्योंमें यह रोदन और मोहनकी शक्ति कुशल कविके सम्बन्धसे ही माननी पड़ेगी, प्रवक्ता और नटोंमें शिक्षानैपुण्य और अभ्यास-पाटव स्वीकार करना पड़ेगा। ये सभी सामाजिकोंके हृदयको आकृष्ट करके कुछ काल-पर्यन्त उनके मनको निश्चल बनानेकी चेष्टा करते हैं। श्रोता, द्रष्टा या सामाजिक उनके वर्णन, प्रवचन और अभिनयका पाटव देख-सुनकर अपने सांसारिक विषयोंमें निमग्न सुखी-दुःखी एवं मूढ़ चंचल मनको स्थिर करनेके लिए उनमें यथारुचि प्रवृत्त होते हैं। जब सहृदय पुरुषोंका चित्त समाकृष्ट होता है तब वे निश्चित रूपसे समझते हैं कि ये लोग हमारे मनके हरणमें पटु हैं, विशेष करके नाटकमें नट। वे अनुकरणके द्वारा राम, दुष्यन्त आदिके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चरित्रके प्रदर्शनका प्रयत्न करते हैं और अपनेको राम, दुष्यन्त आदिके समान ही प्रकट करते हैं।

उन-उन दृश्योंमें सहृदयोंको ऐसा अनुभव होता है कि हमारे सामने राम, दुष्यन्त आदि उपस्थित हैं। उन्होंने पहले शास्त्रोंमें पढ़कर जो यह ज्ञान प्राप्त किया था कि अनुकार्य दशरथनन्दन राममें सीताके आलम्बनसे होनेवाला शोक, विभाव आदिके द्वारा अत्यन्त परिपुष्ट हो गया था, वही शास्त्रज्ञान अनुकर्ता नटको देखकर सहृदयके हृदयमें प्रत्यक्ष हो जाता है। यह बात अनुभवसिद्ध है इसलिए अङ्गीकार करना पड़ेगा कि जिन्हें कभी शोक आदि भावोंका अनुभव नहीं हुआ है और जिन्होंने कभी रामकथा नहीं सुनी है उनके सामने कोई कुशलसे कुशल नट अभिनय करे तो भी उनका चित्त आकृष्ट नहीं होगा।

जो अभिनेता शोकसे नितान्त अपरिचित है वह यदि रामचरितका अभिनय करनेके लिए रङ्गशालामें प्रवेश करे तो उसका अभिनय देखकर भी सहृदय पुरुषोंका चित्त समाकृष्ट नहीं होगा। चित्तका समाकर्षण सुगम नहीं है। यह चित्त विविध वृत्तियोंसे आक्रान्त रहता है। जब तक यह प्रवाहधर्मिणी चित्तवृत्ति स्थिर नहीं की जाती, तबतक सहृदय भी साधारण ही रहेंगे। इसमें नटकी कुशलता ही एक साधन है, जिससे सामाजिक पुरुष भी अपनी चित्तवृत्तिको स्थिर करके अनुकार्यगत रसका अनुभव करता हुआ संतृप्त होता है। इस प्रकार जो रस अनुकार्य राम आदिमें है वही कुशल नट अपने विशेष अभिनयके द्वारा सामाजिकोंको ग्रहण करा देता है। भट्ट लोल्लट प्रभृति आचार्य इसी मतको मान्यता देते हैं।

यही ठीक भी है। आहिताग्नि यजमान विविध सप्ततन्तु यज्ञोंका अनुष्ठान करनेके लिए ऋत्विजोंका वरण करता है।

अध्वर्यु, होता आदि अपने-अपने अधिकारके अनुरूप श्रद्धासहित कर्म करते हुए मन्त्रोच्चारण करते हैं। मन्त्रोंके द्वारा देवताओंके रूप प्रतिपादित होते हैं। यदि होता तथा अध्वर्यु ठीक-ठीक मन्त्रार्थको समझकर देवताके गुणका कीर्तन करें तो कर्मठ सामाजिक एवं यजमानको ऐसा अनुभव होगा कि यज्ञ-मण्डपमें हविष्य-ग्रहणके लिए प्रत्यक्ष रूपसे इन्द्र आदि देवता आये हुए हैं। इससे उन्हें सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है। प्राचीन महापुरुषोंने चित्तवृत्तियोंके नियन्त्रणके लिए ही इन कर्मोंको प्रवृत्त किया है। भले ही चित्तवृत्तियाँ विविध धारामें प्रवाहित हों, होता उन्हें निरुद्ध करके यजमानको यज्ञरूपसे भावित करता है, जैसा कि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रुतिने कहा है—'यज्ञ ही यजमान है।' साथ ही यजमान होताको अग्निरूप समझता हुआ अपना कर्म करे जैसा कि 'अग्निर्वै होता' इस श्रुतिसे कहा गया है। यदि इस प्रकार दोनों कर्म करें तो अवश्य ही कर्मठ दर्शकोंका यज्ञमें चित्त समाकृष्ट होता है और वे प्रसन्न होते हैं। इसीलिए प्रेक्षकोंका चित्त निश्चल करनेके लिए अनुष्ठाताओंको ठीक-ठीक कर्म करने होते हैं। यह सच है कि कर्मजन्य फलका भोक्ता यजमान ही होगा, तथापि होता, ऋत्विक् तथा कर्मठ प्रेक्षक सभीका मन एकाग्र होता है और उन्हें एक विलक्षण शान्ति तथा तृप्तिका अनुभव होता है। ठीक इसी प्रकार अनुकार्य राम आदिमें रसके विद्यमान होनेपर भी अनुकर्ता नट आदिकी चित्तवृत्ति राम आदिकी भावनासे युक्त हो जाती है और उन्हींकी समानाकारता देखनेवाले सामाजिकोंको भी अप्रतिहत रूपसे रसास्वाद होता है। भावनाविष्ट हो जानेपर अनुकर्ता नट भी नृत्य, गीत, वाद्यमें एकतानतारूप लयका अनुसरण भी करने लगते हैं क्योंकि शिक्षाविशेष तथा अभ्यासपाटवसे ऐसा होना युक्तियुक्त है। सामाजिक पुरुष भी अभिनयके सामर्थ्यसे यह अनुभव करने लगते हैं कि राम सुखी हैं, राम सीताके लिए शोकवान् हैं। दुष्यन्त-शकुन्तला रतिसे युक्त हैं। ऐसी स्थितिमें उन्हें आनन्दका होना निश्चित है। अब ऐसी स्थितिमें अभिनेता और सामाजिक थोड़ी देरके लिए बाह्य जगत्के सम्पर्कसे रहित हो जाते हैं और उनकी चित्तवृत्तियाँ एकतान हो जाती हैं। उनके मनमें किसी प्रकार-का दुःख नहीं रहता। इसलिए यह आनन्द निश्चय ही चमत्कारजनक होता है, यह बात निर्विवाद है।

अर्द्धनारीश्वर

अच्छिन्नमेखलमलब्धदृढोपगूढमप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति ।
कान्ताविमिश्रवपुषः कृतविप्रलम्भसम्भोगसख्यमिव पातु वपुः पुरारेः ॥

यह है त्रिपुरारिका श्रीविग्रह। आधा गौरी आधा शिव। एक ओर तो कान्तालिङ्गित है और दूसरी ओर न मेखला टूटी, न दृढ़ आलिङ्गन प्राप्त हुआ। न कभी चुम्बन मिला और न तो दोनोंमेंसे किसी एकने दूसरेके मुखका सौन्दर्य ही देखा। आश्चर्य है! इस श्री-विग्रहमें तो जैसे सम्भोग और विप्रलम्भ, संयोग एवं वियोग—दोनों शृङ्गार सख्य करके बैठे हैं।

(—शृङ्गार प्रकाश)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसा मीमांसकमतानुयायियोंका कहना है।

नैयायिक पद्धतिको स्वीकार करके श्रीशंकुक आदि आचार्यों अनुकर्तामें रामादिगत भावका अनुमान करते हैं। सामाजिकोंको यह तो ज्ञात ही रहता है कि इस समय राम, दुष्यन्त आदि अनुकार्य नहीं हैं उनका नेपथ्य धारण करके नट ही अभिनय कर रहे हैं। ऐसी स्थितिमें नटके कौशलसे सामाजिकोंकी चित्तवृत्ति चित्रतुरगन्यायसे नटमें अनुकार्यगत स्थायिभावका अनुमान करनेके लिए प्रवृत्त करती है। भिन्न-भिन्न स्थायिभावके उद्देश्यसे जब नट विभाव-अनुभाव और व्यभिचारियोंका प्रयोग करता है तब सामाजिक पुरुष उनका अनुभव करके यह निश्चय करता है कि यह राम हैं सीताके लिए शोकग्रस्त। यह दुष्यन्त हैं शकुन्तलाके प्रेमी। क्योंकि इसमें वैसे ही विभाव आदि दीख रहे हैं। मीमांसानुसारी मतमें सामाजिक नटको 'राम'के रूपमें देखता है और न्यायानुसारी मतमें सामाजिक नटके रूपमें रामका अनुमान करता है। हमारे प्राचीन आचार्योंने कहा है कि तर्करसिक पुरुष प्रत्यक्षसिद्ध अर्थको भी अनुमानके द्वारा जानना चाहते हैं। नटमें चाहे अनुकार्य राम आदिका आरोप हो चाहे अनुमान। पदार्थ तो एकरूप ही है। मतभेद केवल पदार्थ-प्रतिपादनकी शैलीके भेदसे ही होता है। न्यूनाधिक भाव प्रकारमें ही है, वस्तुमें नहीं। नाट्यरस दोनोंको इष्ट है। परन्तु एक उसे नाट्यसम्बन्धी रस मानता है, दूसरा उसको नटाश्रयकत्वेन नाट्यरस मानता है। पहला रसको अनुकार्यमें मानकर नाट्यसम्बन्धी होनेके कारण नाट्यरस मानता है, दूसरा अनुकर्तामें रसको मानकर। दोनों ही युक्तियुक्त हैं। दोनों मतोंमें स्थायीका अवभास आवश्यक है। नाट्यसम्बन्धी होनेसे, नाट्याश्रयक होनेसे, नाट्यहेतुक होनेसे अथवा नटनयोग्य होनेसे उसके अवभासमें कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि रसका भान तो सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो रसकी प्रतीति, उत्पत्ति अथवा अभिव्यक्ति स्वीकार नहीं करते। वे अभिधायकत्व, विधायकत्व और भोगकृत्त्व इन तीन व्यापारोंको स्वीकार करके ऐसा कहते हैं कि सहृदयोंको केवल तीसरे व्यापारसे ही भोग होता है। उनके मतमें भी अभिधायकत्व व्यापार केवल श्रव्यकाव्यके आश्रित है इसलिए दृश्य नाट्यमें उसका कोई उपयोग नहीं है। भावकत्व व्यापारसे भी राम-सीतादिका सम्बद्ध परित्याग करके अभिनयके विषय विभाव आदिको नायक, नायिकासे सम्बन्ध करके और साधारणीकरण करके तृतीय व्यापारसे ही भोग स्वीकार करना पड़ेगा। यह भोग एक प्रकारका रसका साक्षात्कार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। यह अनुभव स्मरण और प्रतिपत्तिसे विलक्षण है। वैलक्षण्यका कारण ये तीन अवस्थाएँ हैं—द्रुति, विस्तार, विकास। पहली अवस्था द्रुति रजोगुणके अधीन है। द्वितीय अवस्था विस्तार तमोगुणके अधीन है। रजोगुण और तमोगुणसे अनुविद्ध सत्त्व है और विकास उसीके अधीन है। सत्त्वगुणसे ही रस-साक्षात्काररूप भोगको स्वरूपलाभ होता है। रस-साक्षात्कार-दशामें सत्त्वगुणकी प्रचुरता रहती है। उस समय सामाजिकको स्वात्मचैतन्य-रूप परानिर्वृत्तिकी प्राप्ति होती है क्योंकि उस समय दूसरे सब वेद्य विगलित हो जाते हैं। उस समय सामाजिक ऐसा लोकोत्तर आनन्द अनुभव करता है कि मैं ही सीता-विषयक शोकवान् राम हूँ, मैं ही शकुन्तलाविषयक रतिमान् दुष्यन्त हूँ। यह अवस्था तबतक रहती है जबतक कुशल नट इन विभावादिकोंका अनुवर्तन अभिनीत करता रहता है।

श्रीआनन्दवर्द्धनाचार्य और अभिनव गुप्तके मतमें भी रससाक्षात्कारकी चरमावस्था यही है। वे भावकत्व और भोजकत्वरूप दोनों व्यापारोंको स्वीकार न करके केवल ध्वनन व्यापारसे ही अपने मतका प्रतिपादन करते हैं। इतनी बात तो निश्चित ही है कि सभी पक्षोंमें सहृदयोंको रसप्रतीति एकरूप ही होती है। श्रव्यकाव्योंमें सालङ्कार सगुण शब्दार्थ विभावादिका समर्पण करते हैं और नाट्यमें कुशल नट अपने अभिनयसे उनका समर्पण करते हैं। दोनोंमें ही रसप्रतीति एक-सी ही है। यह रस-प्रतीति कहीं प्रत्यक्षसे, कहीं अनुमानसे, कहीं भोजकत्व-व्यापारसे और कहीं ध्वनन व्यापारसे उदित होती है, इसलिए निमित्तभेदके कारण भिन्न-भिन्न रूपसे कही जाती है। प्रतीतित्वरूप तो सर्वत्र एक-सी ही है। शाखाचन्द्र न्याय या अरुन्धती-दर्शन न्यायसे सभी पक्ष युक्तियुक्त हैं। सभी पक्षोंमें उद्देश्य एक ही है और वह है चित्तवृत्तिनिरोधके द्वारा आनन्दकी प्राप्ति। किसी भी व्यापारमें साध्य, साधन और इतिकर्त्तव्यता इन तीनोंकी अपेक्षा होती है—क्या, किससे और कैसे? श्रौत व्यापार याग आदिमें स्वर्गादि साध्य हैं, होमादि साधन हैं और अङ्गकलाप इतिकर्त्तव्यता हैं। वेद भावक है, फलार्थी पुरुष अङ्गसहित यागादिके अनुष्ठानसे स्वर्गादिरूप आनन्दकी भावनासे युक्त होता है। इसी प्रकार काव्य और नाटक भावक हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, भोगकृत्त्व और ध्वनन आदि व्यापार साधनसे तथा गुण-अलंकार-औचित्यादिरूप इतिकर्तव्यतासे वह सामाजिकके हृदयमें रस और आनन्दको भावित करता है। जैसे यागमें दान, होम, प्रणयन और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्वाप इत्यादि भिन्न-भिन्न साधन हैं, प्रयाग आदि इतिकर्तव्यता भिन्न-भिन्न हैं, स्वर्ग-पशु-पुत्रादि साध्य भी भिन्न-भिन्न हैं, तथापि उनका मुख्य फल सुख एकरूप ही है, ठीक वैसे ही काव्य और नाटकमें भी साधन, इतिकर्तव्यता और साध्योंके भिन्न-भिन्न होनेपर भी सुख एक ही है। कोई कोमल शय्यापर सोता है, कोई चटाई या घासपर सोता है, कोई कर्कश चबूतरेपर सोता है, सोनेका स्थान भिन्न-भिन्न होनेपर भी सुषुप्ति-जन्य सुख सर्वत्र निर्विशेष ही है।

विचारकोंको कहीं कोई न्यूनता भी भास सकती है। विमर्शक इससे परस्पर एक दूसरेकी निन्दा भी कर सकते हैं। अपना मत सिद्ध करनेके लिए दूसरेकी निन्दा की ही जायगी, किन्तु प्रेक्षकोंको समदृष्टि रखकर वस्तु तत्त्वकी परीक्षा करनी चाहिए, निन्दा कर्ममें प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। देखनेमें आता है कि जब वेद भी गाय और घोड़ोंकी स्तुति करता है तब कहता है कि पशु तो गाय और घोड़े ही हैं, अन्य तो अपशु हैं। इससे भेड़-बकरीकी निन्दा ध्वनित होती है। परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि हम लोग भी भेड़-बकरीकी निन्दा करें। क्योंकि निन्दाका अभिप्राय निन्दनीयके दोषमें नहीं होता; स्तुत्य-की अपकर्ष वृद्धिमें होता है। यही उसका तात्पर्य है। ठीक इसी प्रकार रसके सम्बन्धमें भी पूर्वजोंके द्वारा प्रवर्तित भिन्न-भिन्न मार्गोंमें समन्वय दृष्टिका ही अनुभव करना चाहिए।

●

सुख दुःख सम्पद विपद एकरस प्रेम बढ़ावै।
जागत सोवत सपन सदा अनुगुणित दृढ़ावै॥
वही सजन विश्राम धाम आराम राम है।
तन यौवन वन जरैं किसीसे कुछ न काम है॥
पल-पल परदा हटै, सटै मन, नेह नवल घृत।
ऋत मधुरामृतपूर मग्न प्रियतम सुख संभृत॥
नित-नित नव उन्मेष, निमज्जन-उन्मज्जन हो।
मैं की सुधि-बुधि खोइ प्रीति रस संमज्जन हो॥

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ईश्वर आपके पास : एक प्रवचन

(प्रवचनकार—पू० पा० महाराजश्री)

संकलयिता
श्रीरामचन्द्र शर्मा, शास्त्री, एम० ए०, पी० एच० डी०, सा० रत्न

आस्तिकता और नास्तिकता दोनोंका फल प्रत्यक्ष है। ईश्वर और चैतन्यकी सत्ता-महत्ता स्वीकार न करनेका यह प्रत्यक्ष फल है कि हम, हमारा मन और शरीर सब कुछ एक साथ मर जाता है और सदा-सर्वदाके लिए जड़तामें विलीन हो जाता है। इसके विपरीत ईश्वर अथवा चैतन्यको देहादिसे अलग विवेक कर लेनेवाले और माननेवाले सदा-सर्वदाके लिए इष्टमें मिल जाते हैं। आस्तिकताका यह प्रत्यक्ष फल है। इस बातको स्पष्ट करनेके लिए हम यों कह सकते हैं कि आस्तिककी दृष्टिसे देहसे पूर्व भी आत्माका अस्तित्व है और पश्चात् भी। देह उत्पन्न होता है, देहमें परिवर्तन होते हैं; देह मरता है, मरनेके बाद भी बदलता रहता है; परन्तु आत्मा ज्यों-का-त्यों रहता है। नास्तिक इन बातोंकी हँसी उड़ाता है और अपनी खोज पूरी किये बिना ही बिना अनुभवके यह मान बैठता है कि चैतन्यसत्ता है ही नहीं। वह जड़ सचमुच ही आग्रहजड़ है। चेतन सत्ताकी साक्षात् अनुभूतिके लिए धर्मानुष्ठानके द्वारा देहेन्द्रियको नियन्त्रित करना पड़ता है। इसका फल यह होता है, जैसे छिलका अलग हो गया हो और गूदा तथा गुठली शेष रह गयी हो। मर्यादोचित शिष्टानुशिष्ट कर्म करने एवं अमर्यादित, अनुचित, अशिष्ट कर्मका परित्याग कर देनेसे आत्मा कर्ताके रूपमें देहेन्द्रियादिकोंसे पृथक् निखर आता है। मनुष्यके लिए केवल दो ही गतियाँ हैं—एक तो यह कि वह अपनेको जड़ताके प्रवाहमें डाल दे अथवा नियन्त्रण और संयम करके अपनेको चेतनकी ओर उन्मुख करे। चेतनको जानना मानना ही धार्मिकताका प्रारम्भ है। सम्पूर्ण विश्वमें ऐसा कोई धार्मिक सम्प्रदाय नहीं है—भारतीय, अभारतीय, वैदिक या अवैदिक, जो किसी-न-किसी रूपमें चेतन सत्ताको स्वीकार न करता हो। चेतन सत्ताकी स्वीकृति ही धर्मकी मूलभित्ति है और धर्मानुष्ठान ही उसे जड़ताकी दृढ़ ग्रन्थिसे मुक्त करता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चेतन सत्ताकी स्वीकृति ही आस्तिकताका मूल है। अपनेको चेतन जान लेनेपर देह, इन्द्रियके भोग-रोगका उतना मूल्यांकन नहीं रहता। देहाभिमान छूटता है, प्रयासकी दिशा बदल जाती है, मन वासनाका अनुसरण छोड़कर अनुशासनमें टिकने लगता और बारंबार चेतनके पास जाकर बैठता है। ईश्वरचैतन्यके पास बैठना उपासना है और आत्मचैतन्यके पास बैठना योग है। चैतन्यकी उपासना और उसमें स्थिति होनेसे देश-कालके बन्धन श्लथ हो जाते हैं और व्यक्तिका व्यक्तित्व जीवनकी उस अनन्त चैतन्य सत्तासे एक हो जाता है। नास्तिकता दुःख, अज्ञान तथा मृत्युका मार्ग है। आत्मज्ञान अनन्त जीवन, स्वतन्त्र सुख और परमानन्दका मार्ग है। दोनों मार्ग खुले हैं—येनेष्टं तेन गम्यताम्। जिससे जाना चाहो, जाओ। केवल दृष्टि ही दी जा सकती है। किसीको घसीटकर ले जाना न तो व्यावहारिक है और न उचित। अपने मनको अपने ही अन्तर्देशके सूक्ष्मतम प्रदेशमें प्रवेश करने दीजिये। उसे चेतनसे एक होने दीजिये। फिर सब समीप है। न ईश्वर दूर है और न तो उसके मिलनेमें देर है। नारायण दूर हो ही नहीं सकता। नरका हृदय नार है और वही जिसका घर है उसे नारायण कहते हैं। वह तो यहीं है, अभी है और यहीं है। हममें है, हमारी माताके गर्भमें है, पिताके वीर्यमें है, गेहूँके कणमें है, पञ्चभूतमें है। उसके अतिरिक्त और है ही क्या? वह विश्व, विश्वातीत, विश्वसाक्षी, विश्वनिर्माता, विश्वोपादान एवं अद्वितीय है।

प्रश्न यह उठता है कि वह ईश्वर हमारे अन्तरमें ही निरन्तर बैठा है तो दीखता क्यों नहीं? आप दर्शनकी प्रक्रियापर ध्यान दें। हमारी इन्द्रियोंसे जो पदार्थ दीखते हैं, उनमें इन्द्रिय और पदार्थके बीचमें भी एक तीसरी वस्तु रहती है। उसको अधिदैव कहते हैं। जैसे, नेत्र और रूपके बीचमें प्रकाशका होना आवश्यक है। नेत्र अध्यात्म हैं, रूप अधिभूत है और प्रकाश अधिदैव है। इसी प्रकार जब साक्षी अपनी दृष्टिसे किसी वस्तुको देखता है तो साक्षी और वस्तुके बीचमें ईश्वर होता है। जब बुद्धिसे हम औचित्य, न्याय्य अथवा धर्मका निश्चय करते हैं तब बुद्धिको सहायता देनेवाले चैतन्य प्रकाशका नाम ही वासुदेव होता है। जो सबकी बुद्धिके अन्तरमें रहकर उसका नियमन करता है, प्रेरणा और प्रकाश देता है, उसीको तो ईश्वर कहते हैं। अच्छाई-बुराई, हित-अहितका ज्ञान किसके सहारे होता है? व्यष्टि एवं समष्टि बुद्धियों और उनके विषयोंको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशित करनेवाला कौन है? जिससे सब चमक रहा है, दमक रहा है, वही चैतन्य ज्ञानस्वरूप ईश्वर है।

'यदि कोई टेलीफोन (तडित् स्वन) पर बात करना चाहे तो किस नम्बरपर मिलाये?' एक महात्मासे किसीने प्रश्न किया। महात्माने हँसकर उत्तर दिया—'अपने हृदयका डायल निरभिमानताके नम्बरपर घुमाओ। ईश्वर तुम्हारी अन्तरकी ध्वनि सुनेगा और उत्तर भी देगा। चाहे जितनी भी बात कर लो! 'तद्दूरे तद्वन्तिके'! ईश्वर दूरसे दूर है, पाससे पास है।'

ईश्वर और जीवके बीचमें कोई आवरण नहीं है। जीव और ईश्वर परस्पर घुल-मिलकर ही रहते हैं। वेदान्तियोंने मल, विक्षेप और आवरण तीन दोष माने हैं, परन्तु भक्तिसिद्धान्तमें आवरण दोष नहीं है। अंशी और अंश, सिन्धु और बिन्दु, जल तथा तरङ्गके बीचमें यवनिका कहाँ है। भक्तिके आचार्योंने स्पष्ट शब्दोंमें उद्घोष किया है कि ईश्वरके प्रति प्रेमकी न्यूनता अथवा ईश्वरसे विमुखता ही उसके दर्शनमें बाधक है। नर नारायणसे दूर जा नहीं सकता। नारायण नरसे पृथक् कभी हो नहीं सकते। नर-नारायणकी सनातन अचल एकरस जोड़ी है। नारायण नर हैं तो नर नारायण है। प्रह्लादने कहा है कि यह सारी सृष्टि और स्वयं मैं ईश्वर ही है—'सकलमिदमहं च वासुदेवः' (वि० पु०)। आश्चर्यकी बात तो यह है कि दर्शनशास्त्रकी कक्षामें परस्पर मतभेद रखनेवाले अद्वैती शंकर विशिष्टाद्वैती रामानुज, विशुद्धाद्वैती वल्लभ और अचिन्त्य द्वैताद्वैती बलदेव विद्याभूषण सभी प्रह्लादके इस वचनको अपने-अपने मतकी पुष्टिके लिए उद्धृत करते हैं और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' श्रुतिके समान ही स्वीकार करते हैं। ऐसी अवस्थामें ईश्वरके अदर्शनका कारण क्या? श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—'यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे हृदयमें ईश्वरके प्रति अनुरागका उदय नहीं हुआ।' यह अनुरागका अनुदय ही ईश्वरके दर्शनमें प्रतिबन्धक है।

अब प्रश्न है कि भक्ति क्या है? शाण्डिल्यके अनुसार ईश्वरमें परमानुराग ही भक्ति है। नारदके अनुसार वह परम प्रेमरूपा है। अमृतस्वरूपा भी है। अङ्गिराके अनुसार परमात्मा रसरूप है, इसलिए पूर्ण रसात्मिका वृत्ति ही भक्ति है। जिस किसी भी निमित्तसे प्रेमपूर्वक चित्तवृत्तिका भगवदाकार होना ही भक्ति है। मैंने एक महात्मासे प्रश्न किया—'हमारे जीवनमें भक्ति कैसे प्रकट हो?'

उन्होंने कहा—माता जब बच्चेको पाठशाला भेजती है तो साथमें कलेऊ रखती है। आने जानेके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सुख सुषमाकी सदन, मदन मद कदन, वदन छवि।
प्रणय विनय रस अयन नयन अन्तरतमके कवि॥
अमित अमृत सित हसितलासित रक्तिमा अधरकी।
मुद मद बोरति हृदय कहूँ क्या छटा सुघरकी॥

लिए सवारीकी और मार्गमें सुरक्षाकी व्यवस्था भी कर देती है। जबतक अपना शिशु माताके पास लौट नहीं आता तबतक वह उसका ध्यान भी रखती है। क्या परमेश्वरने, हमारे सच्चे माता-पिताने हमें संसारमें खाली हाथ भेज दिया है? नहीं, नहीं, भक्ति तो हमारे साथ ही रख दी। यह शाश्वत पाथेय हमारे हृदयकी झोलीमें भरा हुआ है। कहाँ है वह भक्ति? उसके दर्शन दुर्लभ क्यों हो गये हैं? उत्तर स्पष्ट है। हमारे हृदयमें मोह है। उसकी दो वृत्तियाँ हैं—अहंता और ममता। देहमें अहंता प्रधान है, परिवार आदिमें ममता। मोहकी इन दोनों वृत्तियोंको मिटानेकी आवश्यकता नहीं है। बस, इन्हें भगवान्‌के साथ जोड़ना है। 'मैं' का पेट देहसे मत भरो, भगवान्‌से भरो। मेरा-मनका पेट बेटेसे नहीं, धनसे नहीं, भगवान्‌से भरो। बस, मोहका रुख ईश्वरके सम्मुख कर दो। इसीका नाम भक्ति है। इसी प्रकार काम, लोभ आदिका मुख भी भगवान्‌की ओर मोड़ दो। भगवान् ही परम सुन्दर, परम प्रिय हैं। भगवान् ही परम धन, सर्वस्व हैं। काम-लोभसे लड़ो मत! उनका रूपान्तर कर दो। विषयके अतिरिक्त उनका और कोई रूप नहीं है। इसलिए जहाँ उनके विषयके रूपमें भगवान् होंगे, वहाँ वे ही भक्ति बन जायँगे। शान्ति युद्ध और संघर्षमें नहीं है, मनके भगवान्‌के साथ जुड़नेमें है। हम प्रह्लादके शब्दोंमें प्रार्थना करें कि अविवेकी पुरुष संसारके विषयोंमें जैसी प्रीति करते हैं, हमारी वैसी ही प्रीति आपके चरणोंमें बनी रहे—'जिमि अविबेकी पुरुष सरीरहिं।'

भगवान्‌के साथ प्रीति जोड़ें कैसे? वृत्तियोंको कैसे मोड़ें? विषयवासनाको कैसे छोड़ें? इन चिराभ्यस्त सम्बन्धोंको कैसे तोड़ें? उपाय यह है कि धन, परिवार, कामिनी और शत्रुके स्थानपर भगवान्‌को बैठाकर उन्हें निकाल फेंकिये। प्यार और प्यास, लोभ एवं क्षोभ, क्रोध एवं शोध भगवान्‌के साथ जोड़िये। उन्हींके लिए रोइये, हँसिये। उन्हींसे लड़िये-झगड़िये। सम्बन्धके सारे बन्धन उन्हींके साथ बाँधिये। आप देखेंगे कि भगवान्‌की

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राप्तिके लिए जो कुछ साधन-सामग्री चाहिए, वह आपको पहलेसे ही प्राप्त है।

हमारी भक्तिका क्या रूप हो ? आप पहले विचार कीजिये कि आपको भगवान्‌का अधिक वियोग फुरता है या संयोग ! दोनों ही स्थितियोंमें आप गोपियोंकी वियोग-लीला और मिलनलीलाका अनुसंधान कर सकते हैं। यदि हम संसारकी अच्छी वस्तुओंको अपने साथ सटाकर रखना चाहें और बुरी वस्तुओंको हटा देना चाहें और बादमें भक्ति करनेकी योजना बनायें तो वह कभी सधेगी नहीं। बहुत लोग योजना बनाते-बनाते ही मर जाते हैं। संसारकी सब वस्तुओंको हटाना-सटाना शक्य नहीं है। थोड़ी-सी वस्तुओंको भी हटाना-सटाना देरतकके लिए नहीं हो सकता। यह कार्यक्रम तो कभी समाप्त नहीं हो सकता। इनसे सुखी-दुखी होना मूर्खता है। इनको जहाँका तहाँ, ज्यों का त्यों रहने दिया जाय। इनसे छेड़छाड़ करके रार मचाना अनावश्यक है। हमें यही नीति अपनानी पड़ेगी कि 'तू तो राम भजो जग लड़वा दे'।

मैंने एक महात्मासे प्रश्न किया—'संसारको कितना सुधार दिया जाय, कैसा सँवार दिया जाय या इसमें कितना निखार दिया जाय कि इसको आप पसन्द करेंगे ?' उन्होंने कहा—भाई ! संसार तो हमें कभी पसन्द न आयेगा। हमें तो जिसको पसन्द करना था, पसन्द कर चुके हैं। हम क्या इसीके लिए पैदा हुए हैं ? यहाँसे कबीरकी भाँति बेदाग जाना चाहिए—'दास कबीरा ऐसी ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीन्हि चदरिया।' भगवान्‌ने हमें अनेक प्रकारकी वृत्तियाँ इसलिए दी हैं कि हम ऊबें नहीं। ईश्वरने दुःख इसलिए दिया है कि हम संसारमें अटकें नहीं। निद्रा इसलिए दी है कि हम भटकें नहीं। अपने प्रिय स्थान अन्तर्देशका ज्ञान बना रहे। चंचलता इसलिए दी है कि हम कहीं लटकें नहीं। किसीके प्रेममें फँस न जायँ। नित्य खीर खाकर भी मन ऊब जाता है। मन यदि चञ्चल है तो इस बन्दरको मनमोहनके सामने नचाइये। वृत्तियाँ चंचल हैं तो इन अप्सराओंको भगवान्‌के सामने रासमें लगा दीजिये। इसीसे ईश्वरके साथ जुड़ना सहज हो जाता है। जब आप यह कल्पना करेंगे कि ईश्वर हमारे साथ जगता है, स्नान एवं खान-पान करता है, हमारे साथ सोता और चलता है तब आप देखेंगे सचमुच ईश्वर आपके साथ है। आपकी कल्पनामें ईश्वरके आरूढ़ होते ही वह कल्पना न होकर सच्ची

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बेटा ! तुम जीत गये

वृन्दावनके श्रीकृष्णश्रममें एक बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति आये। श्री उड़ियाबाबाजी महाराजके सामने ही उन्होंने बहुत-सी अनाप-शनाप बातें कहीं और शारीरिक रूपसे भी अपमान किया। महाराजश्री बड़े प्रेम और सहज भावसे उनके साथ बातचीत करते रहे। जब श्री बाबाजीके साथ भोजन करनेके लिए वे ऊपर गये तो देखा, बाबा बड़े उदास थे। महाराजश्रीने पूछा—'आप उदास क्यों हैं ?'

बाबाने कहा—'उस व्यक्तिने मेरे सामने ही तुम्हारा इतना अपमान किया, इसका मुझे बहुत दुःख है।

महाराजश्री—'मुझे तो अपमानका कोई ख्याल ही नहीं हुआ। मैं समझता था कि वे बड़े प्रेमसे यह सब कह-कर रहे हैं।'

श्री उड़ियाबाबाजी महाराजके नेत्र चमक उठे। प्रसन्नतासे महाराजश्रीकी पीठ थपथपाते हुए उन्होंने कहा—'बेटा ! तुम जीत गये।'

• ★ •

हो जायगी। आप गोपियोंके सम्भोग-विप्रलम्भात्मक संयोग-वियोगरूप प्रेमपर ध्यान दें, आपके हृदयमें वह प्रेम उतर आयगा। भगवान् स्वयं प्रेमस्वरूप हैं। वे कुरुक्षेत्रमें यशोदा माताकी गोदमें सिर रखकर रोते हैं, सुदामाके पाँव आँसुओंसे धोते हैं, रुक्मिणीके लिए उन्हें नींद नहीं आती। जीव और ईश्वर नित्य सखा हैं। उनके पास पहुँचे बिना जीव सुखी नहीं हो सकता। इसका प्रारम्भ आस्तिकता, श्रद्धा, आस्था और दृढ़ निश्चयसे होता है। परन्तु इसकी परिणति सत्यके साक्षात्कारमें होती है। सत्य अभी है, यहीं है, यही है और तुमसे जुदा नहीं है। केवल एक बार उसकी ओर उन्मुख होनेकी आवश्यकता है।

•

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेमरस

प्रेयांस्तेऽहं त्वमपि च मम प्रेयसीति प्रवाद-
स्त्वं मे प्राणा अहमपि तवास्मीति हन्त प्रलापः ।
त्वं मे ते स्यामहमिति च यत्तच्च नो साधु राधे
व्याहारे नौ न हि समुचितो युष्मदस्मत्प्रयोगः ॥

राधे ! मैं तुम्हारा प्रेयान्—प्यारा हूँ और तुम मेरी प्रेयसी । तुम मेरे प्राण हो और मैं भी तुम्हारे प्राण हूँ । तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा । यह सब बातें प्रवाद हैं, प्रलाप हैं और अयथार्थ हैं; क्योंकि हम दोनोंके कथा-प्रसङ्गमें तुम और मैं—इन पृथक्-पृथक् दो शब्दोंका प्रयोग सर्वथा अनुचित है ।

इसमें चित्तद्रव स्थायिभाव है । वह दोनोंमें है । आलम्बन भी दोनों ही हैं । उद्दीपन परस्पर गुणका सौरभ है । अनुभाव विशिष्ट निर्वचनका अभाव है । उत्सुकता आदि व्यभिचारी हैं । यह रस राधाकृष्णमें परोक्षरूपसे है, दर्शकमें प्रत्यक्ष । प्रेमरसमें सब रसोंका अन्तर्भाव है । कोई-कोई युगल रसमें शृंगाररसको ही प्रधान मानते हैं । ऐसी दशामें शृंगार अंगी है और प्रेम अंग । कभी-कभी अंग भी उद्रिक्त हो जाता है । 'अलङ्कार कौस्तुभ'का कहना है कि प्रेम अङ्गी है और शृंगार अंग । इस सम्बन्धमें जयदेवके सुहृद श्रीउमापति धरका श्लोक विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है । प्रेम शृंगारको विस्मृतिके गर्त्तमें डाल देता है :

रत्नच्छायाच्छुरितजलधौ मन्दिरे द्वारकाया
रुक्मिण्यापि प्रबलपुलकोद्भेदमालिङ्गितस्य ।
विश्वं पायान्मसृणयमुनातीरवानीरकुञ्जे
राधाकेलीभरपरिमलध्यानमूर्च्छा मुरारेः ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कच्चे या पक्के

बात पुरानी है। काशीमें एक महात्मा प्रतिदिन गंगा स्नान करनेके लिए अपनी कुटियासे निकलकर दालमण्डीकी गलीसे दशाश्वमेध जाया करते थे। मार्गमें उन्हें प्रतिदिन एक वेश्या मिलती और प्रणाम करके पूछती—'महाराज ! कच्चे या पक्के ?' महात्मा प्रतिदिन बिना कुछ बोले आगे बढ़ जाते। इस प्रकार तीस वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन वेश्याने देखा—सामनेसे एक अर्थी आ रही है। घण्टे-घड़ियाँ बज रहे हैं। शताधिक लोग साथ हैं। उसने पूछा—'यह कौन हैं ?' लोगोंने महात्माजीका परिचय बताया। वेश्याने कहा—'मेरे प्रश्नका उत्तर दिये बिना ही मर गये।' महात्माजीका शव हिला। वे अर्थीपर ही बैठ गये बोले—'माँ ! अब मैं जा रहा हूँ। ईश्वरकी कृपासे मैं पक्का हूँ। शरीर रहते मनके परिपाकका क्या विश्वास है ?' सुखी रहो।'

अर्थीपर केवल शव ही था। ●

मेचक चिकने घने चिकुर सञ्चित कुञ्चित से।
अविकल मनहुँ कपोल कमल अर्चंत सिंचित से॥
गोरोचनवर बिन्दु इन्दु रससिन्धु हिंडोलें।
लोचन-अञ्चल चोर चित्त चोरैं बिन बोलें॥

द्वारकाका भगवन्मन्दिर है। उसके रत्नोंकी आभासे रत्नाकर समुद्र जगमग-जगमग चमक रहा है। परम प्रेयसी पटरानी श्री रुक्मिणीने अपने अत्यन्त पुलकित रोमाञ्चित अंग-अंगसे श्रीकृष्णका आलिङ्गन कर रखा है। परन्तु राधावल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण मधुर-मधुर कालिन्दीकूल-स्थित वेतसी-कुञ्जमें राधारानीके विहारकेलिके सौरभका ध्यान करके मूर्च्छित हो रहे हैं। धन्य है ! धन्य है ! यह शृङ्गार-रसपर प्रेमरसकी विजय। यह चिरकालतक प्रेमीकी रक्षा करे।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संतों की होली

परशुराम चतुर्वेदी

होरी खेलें पीव सों
जहँ बारह मास बसंत !

हमारे संत कवि स्वभावतः कुशल साधक हुआ करते थे और वे अपनी आध्यात्मिक साधनामें निरन्तर निरत रहकर उसकी सुखद अनुभूतिका रसास्वादन किया करते थे, जिससे उनका जीवन कुछ विलक्षण-सा रूप ग्रहण कर लेता था। उनकी चित्त-वृत्ति सदा अपने ध्येय परम-तत्त्वकी ओर उन्मुख बनी रहती थी, जिसके फलस्वरूप वे अपने दैनिक व्यवहारोंमें बराबर आत्म-विभोरसे दीख पड़ते थे, किन्तु, कभी-कभी उल्लासमें आकर वे अपनी उस अनुपम दशाका प्रत्यक्ष चित्रण भी करने लग जाते थे, जिसे बहुधा उनकी सुन्दर बानियोंका रूप मिल जाता था। उनकी ऐसी रचनाएँ हमें इस समय अधिकतर प्रतीकात्मक शैलीमें प्रस्तुत की गयी उपलब्ध होती हैं और उनमें लोक-व्यवसाय, मादकद्रव्य-सेवन, युद्ध-कर्म, आखेट, दाम्पत्यजीवन एवं राग-रंग जैसे विभिन्न विषयोंका उपयोग किया गया पाया जाता है। तदनुसार होली-सम्बन्धी उदाहरण भी हमें वहाँपर साधारण आमोद-प्रमोदके रूपमें चित्रित किये गये-से ही लगते हैं और उन्हें, बानी-संग्रहोंके अन्तर्गत, प्रायः बसंत, चाचर, फाग, और धमार-जैसे शीर्षकोंमें एकत्र किया गया भी दीख पड़ता है। परन्तु, यदि संत कबीर साहबसे लेकर सत्संगी संतोंतककी ऐसी उपलब्ध रचनाओंका कोई तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो हमें यह स्पष्ट हो जाते देर नहीं लगती कि इनके रचयिताओंका वास्तविक उद्देश्य क्या रहा होगा तथा किस प्रकार उन्होंने ऐसे वर्णनोंके व्याजसे अपनी उक्त मनोदशाका ही स्पष्टीकरण किया होगा।

कबीर साहबकी प्रामाणिक समझी जानेवाली बानियोंके संग्रहोंमें एक स्थलपर कहा गया मिलता है कि वास्तवमें स्वयं सद्गुरु वा परमात्मा ही,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अङ्ग अङ्ग आनन्द तरङ्गित प्रेम नीर निधि राधा ।
नित्य सतृष्ण कृष्ण घन चुम्बित गुण गम्भीर अगाधा ।।
छायान्वित माया प्रपञ्च रञ्चक चर-अचर विमोहै ।
कौन मधुर मधु सुधा सान्द्र रससिन्धु ब्रह्मतल जोहै ।।

परम ज्योतिके रूपमें, वसंत ऋतुके खेल खेला करता है और संत उसका अनुभव करते हैं। 'कबीर बीजक'में कदाचित् ऐसी ही अनुभूतिको 'परमार्थ'-की भी संज्ञा दी गयी मिलती है और वहाँपर कहा गया है, 'यह वसंत बारह मासका अर्थात् सदा एक समान बने रहनेवाला होता है तथा इसे कोई विरला ही समझ पाता है।' वहाँपर चाचर शीर्षकवाली पंक्तियोंमें मायाका महान् पुरुषोंके साथ पिचकारी लेकर फगुआ खेलना तथा स्वयं अकेली रहकर, सभीको एक साथ छका देना भी बतलाया गया है, जिसमें विविध प्रलोभनों-का साधन सामने उपस्थित कर, उनके रंगोंमें सबको सराबोर कर देना बड़ी कुशलताके साथ प्रदर्शित किया गया है।

गुरु नानक देवने भी वैसी मनःस्थितिको सदा बसंत कहकर अभिहित किया है और अपने चित्तको सम्बोधित करके कहा है, 'तू गोविन्दका स्मरण करता हुआ सदा प्रफुल्लित बना रह। यह महीना सभी महीनोंमें विशेष रूपमें मुबारक है।' इसी प्रकार संत दादू दयालका कहना है :—

'दादू रंग भरि खेलौं पीव सों, तहं बारह मास बसंत।
सेवग सदा अनंद हैं, जुगि-जुगि देखौं कंत ॥'

जहाँपर वे भी, अपने प्रियतमके साथ प्रेम रंगमें भींजते हुए, उसे युगानुयुग-तक देखते रहना तथा इस प्रकार सदा आनन्दित बने रहना चाहते हैं। संत यारी साहब इसे 'पिया संग होरी खेलना' कहते हैं और बतलाते हैं कि उसकी 'छवि'का देखना ही 'रूप ठगोरी'में पड़ जाना है। परन्तु उनके प्रशिष्य संत गुलाल साहबको केवल इतना ही कह लेनेसे पूरी तृप्ति होती नहीं जान पड़ती। ये बतलाते हैं, 'मैं आनन्दका डंका बजाकर ऐसी होरी खेला करता हूँ। कायाके कलशमें ज्ञानका अबीर घोल दिया है और उसे अपनी सुषुम्नाकी पिचकारीसे छोड़ता हुआ, सुरतिके प्रेमानन्दमें लीन हूँ। मेरी पाँचों सखियाँ अर्थात् ज्ञानेन्द्रियाँ परस्पर मिल-जुलकर चाचरिका उल्लास गान कर रही हैं। मेरी दशा सहज फागकी जैसी हो गयी है, रंग कुछ ऐसा लग गया है कि छूटता नहीं दीखता तथा मैं स्वयं अपने आपपर ही लट्टू हो गया हूँ।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संत चरनदासकी होलीमें यह नित्यका फाग खेलना, कुछ और भी विस्तारके साथ चित्रित किया गया मिलता है। यहाँपर प्रीतिके चोवा चंदनका प्रयोग किया जाता है, ज्ञानकी केशर घिसी जाती है और जो पुष्पवाससे भी झीना-झीना-सा प्रियतम है उसे अपने अंग लगाकर आनन्द-मग्न हुआ जाता है। ऐसी दशामें जो रंगकी गागर भरी जाती हैं वह भी बेरंगी ही हुआ करती है जिसे सखियाँ शून्य महलमें ले जाकर उसे प्रियतमके ऊपर उड़ेल आती हैं, किन्तु जहाँ कभी भ्रमका गुलाल हाथमें लिया गया कि वह तुरंत छिप जाया करता है तथा उसे फिरसे एक बार प्रत्यक्ष करनेके लिए संतगुरुसे अंजन लेकर अपनी आँखोंमें लगाना पड़ जाता है। इन्होंने एक स्थलपर अपने सतगुरु वा परमात्माको ही नित बसंतका खेलनेवाला कहा है और बतलाया है कि उसकी रुचिके अनुसार यहाँपर ज्ञान एवं विवेकके फूल फूल रहे हैं, योग एवं भक्तिकी शाखाएँ तथा जड़ें शोभित हैं तथा इसी प्रकार सत्संगतिके सागर-तटपर उगी हुई प्रेमकी लताएं झूम रही हैं। यहाँपर मर्मका गुलाल उड़ता दीखता है तथा निश्चयकी रमणी अपनेको चोवासे चर्चित किया करती है।

संत तुलसी साहब तो ऐसे खेलको देखते ही बौरीसे बन जाते हैं और ये उसमें सम्मिलित होनेके लिए अपनी सुरतको, मनों केसरके रँगमें रंग देते हैं और इसमें बाधा डालनेवालेको पास फटकने नहीं देते। इनकी पच्चीसों सखियाँ अर्थात् प्रकृतियाँ पिचकारी लेकर मनके ऊपर टूट पड़ती हैं और उसपर प्रहार करने लगती हैं। ऐसा करते समय वे अपने मुख मोड़कर दूसरी ओर कर लेती हैं, जिससे उनपर उसकी ओरसे आता हुआ कोई रंग न पड़ सके। उस समय भरमका अबीर एवं तीनों गुनोंका गुलाल उड़ता रहा करता है, किन्तु वह सत्संगके कारण अपने ऊपर नहीं पड़ पाता और ज्ञानकी भंग छान लेनेपर प्रियतमके साथ चार आँखें करनेमें सुविधा हो जाती है। ऐसी दशामें ये कुमतिके कुमकुमसे आँखें बचाकर अपने चित्तपर चोवा लगाते तथा आशाकी अरगजाका लेपन भी कर लेते हैं और अपने 'कूड़' दुर्गुणोंकी मूठियोंसे

झूठे वादे मत करो सादे सब व्यवहार।
सबसे कर जग जीत लो यही सार का सार॥

× × ×

मनकौ धन है प्रेमरस तनकौ धन है धर्म।
कनकनमें प्रभुके चरन यहै ज्ञानकौ मर्म॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाहर फेंक अपने मनके कीचड़को भी धो डालते हैं। इनका कहना है कि यह मानव शरीर ही वृन्दावन है जिसे पहचानकर इसमें मनको सदा विहार करना चाहिए क्योंकि यदि ऐसा न हो तो हमारी होरीका सारा साज-सामान व्यर्थ और हेय है।

'सत्संग'के 'राधास्वामी'जी भी अपनेको, इस प्रेमके साथ खेली जानेवाली होरीके कारण, सब जगकी ओरसे बौरी हो जानेसे बचा नहीं पाते और ये अपनी दशाका वर्णन करते हुए बतलाते हैं, 'मैंने इसके लिए शीलके गुलाल एवं क्षमाके अबीरसे अपनी झोली भर ली और इस प्रकार मैंने खेलने आये हुए, काम-क्रोधपर विजय पा ली। मैं अपनी सुरत एवं निरत नामक दोनों सखियोंको अपने साथ लेकर, शब्दकी खोजमें दौड़ चली, मैंने सुषम्नाके नाकेको जाकर घेर लिया और बंकनालकी पिचकारी छोड़ने लग गयी और तब त्रिकुटीपर पहुँचकर मैंने शब्दको पकड़ लिया जिसके लिए मुझे कम धूमधाम नहीं करनी पड़ी। मानसरोवरके निकट हंसोंकी सभामें आखिर मायाकी चोरीका सारा भेद खुल गया और वहाँपर नादकी धुन होने लग गयी जिसके फलस्वरूप दयाके रंगसे मेरा घट भर गया और जन्म एवं मरणके दुःख दूर हो गये।' इन्होंने ऐसी होलीका चित्रण अन्यत्र अनेक स्थलोंपर भी किया है, जो सब कहीं बहुत मनोरम जान पड़ता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ये वास्तवमें किसी अत्यंत उच्चकोटिकी आध्यात्मिक मनोदशाको हमारे लिए प्रत्यक्ष करना चाहते हैं।

इनके सुयोग्य शिष्य हुजूर महाराज अर्थात् रायबहादुर शालग्रामजीने भी अपनी ऐसी अनुभूतिका वर्णन बड़े सुन्दर शब्दोंमें किया है तथा उन्होंने भी इसे कुछ विस्तार दिया है। उनका कहना है, 'सुरत प्यारी, अपने चारों ओर प्रेमरंग बरसाती हुई, होली खेलनेके लिए आ गयी। वह अपने हित गुरु चरनोंमें जाकर लिपट गयी और उसके घटके भीतर पहनी गयी सारी भींजकर सराबोर हो गयी। वह मार्गमें त्रिविध गुणोंका गुलाल उड़ाती हुई तथा पंचेन्द्रियोंकी पिचकारी छोड़ती हुई आयी और गुरुके सम्मुख कुंकुमकी मूंठ मारने लग गयी। उसने जगत्के सारे भोग-विलासोंकी धूल उड़ा दी तथा कुलकी लाज-कानका सर्वथा त्याग कर दिया, उसने काल एवं करमके सिरपर चपत जमा दी तथा इसी प्रकार, माया नटनीकी चादर भी फाड़ डाली। उस समय सारे वाचक, जोगी, ज्ञानी एवं करमी स्वांग बना-बनाकर नर-नारियोंको मोहित कर रहे थे, किन्तु मेरा भाग्य खुल गया कि मुझे 'निज घरसे' प्रेमका दान मिल गया और मैं राधास्वामीके चरणोंमें दुलारी बन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गयी।' यहाँपर, अपनी अन्तःसाधनामें पूरी लगनके साथ निरत रहकर अन्तमें सिद्धि पा जानेका भावपूर्ण चित्रण किया गया है।

निष्कर्ष यह कि संतोंने अपनी होलीका वर्णन करते समय जिन प्रतीकोंका सहारा लिया है वे सभी प्रायः हमारे वर्तमान समाजमें की जानेवाली रंग-रलियोंके ही साधनोंसे लगते हैं। यहाँपर वही अबीर, गुलाल और कुंकुम है, जिनका वसंतोत्सवमें प्रयोग होता है, वही पिचकारी है जिससे काम लिया जाता है तथा लगभग वही रंग-ढंग भी है, जिसके अनुसार उनका कुछ अंश उड़ाया, कुछ घोला और छिड़का जाता है। यहाँपर वैसे ही संग-साथवाले हैं, वैसी ही तैयारियाँ की जाती हैं तथा वैसी ही चेष्टाओं-द्वारा किसीको छकाने वा रिझानेका उपक्रम भी किया जाता है। यहाँपर सर्वत्र वही उल्लास है, वही उमंग है और वही प्रेम-विह्वलता है, जो इन अवसरोंपर ऐसे खेलोंमें प्रत्यक्ष भाग लेनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके हृदयको तरंगायित करते दीख पड़ते हैं। यहाँतक कि कुछ भावावेश, कुछ नटखटपन और कुछ साधारण जनसमाजमें प्रचलित छेड़-छाड़तकके उदाहरणोंकी यहाँपर कमी नहीं जान पड़ती। पूरा वातावरण हर्षोन्माद, प्रेम-संगीत, आमोद-प्रमोद एवं चहल-पहलसे भरपूर प्रदर्शित किया गया मिलता है। परन्तु यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो हमें इन संतोंकी पंक्तियोंमें वस्तुतः उस आध्यात्मिक स्वानुभूतिवाले अनुपम उद्गारोंका ही समावेश किया गया मिलेगा, जो उनकी सारी साधनाओंकी अन्तिम सिद्धि बतलायी जाती है। ●

समर्पण

किस जा तुझे पुकारूँ, हर जा तुही तुही है।
हर गुल में या गुलशन में, देखा तुही तुही है॥
मंदिर में या मस्जिद में, गिरजे में भी तुही है।
पत्थर में तू समाया, इंशा में भी तुही है॥
खोजूँ मैं अब कहाँ तक, पाता न पार तेरा।
तेरी अलख-लगी में, मेरी 'अलख' तुही है॥
तेरा प्रकाश दुनियाँ, दुनियाँ में हम सभी हैं।
नजरें उघार देखा, हम मे तुही तुही है॥
हर बात में लखाया, स्वामी तुही बनाया।
'नायक' शरण में पाया, जाहिर तुही तुही है॥

—शारदाप्रसाद नायक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीवल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग

पं० श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी

• ★ •

श्रीमद्वल्लभाचार्य निर्मित यह वन्दनीय मार्ग वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत (प्रस्थान चतुष्टय) से अति पुष्ट हो ईश्वरके प्रति जीवकी अनन्य आसक्तिको प्रकट करते हुए सेव्य-सेवकके बीच पति-पत्नी सम्बन्धकी भारतीय उच्च भावनाके द्वारा उज्ज्वल बन तत्परताके साथ भगवद्भक्तिके प्रति उन्मुख करता है। यह वह मार्ग है, जो पूर्वके सभी भगवत्साधना विषयक मार्गों—वादोंसे शुद्ध, सुबोध और सुसाध्य है। यों तो यह मार्ग वेदभणित 'प्रवाह' और 'मर्यादा' भक्तिमार्गोंका समानार्थी है पर किंचित् गहरी दृष्टिसे देखे जानेपर यह पुष्टिमार्ग प्रवाह तथा मर्यादा-भक्तिमार्गोंसे कहीं अधिक भगवद्भक्तिपरक है।

पुष्टिमार्ग अपने सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' वादके अनुसार सम्पूर्ण जगत् तथा भगवान् कृष्ण स्वरूप 'सत्' रूप है, जिसमें उनका 'चिद्' और 'आनन्द' गुप्त हैं और अंकुर रूपमें 'सत्-चिद्' सरूप 'अणु' = जीव भी है, यही नहीं, पुष्टिमार्ग साधन और तत्फलित फलोंके साररूप ब्रजेश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रके चरणकमलोंकी भक्ति तथा ब्रजमें रमण करते हुए सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण ही साकार 'ब्रह्म' हैं, यह तत्प्रवर्तक रूप भक्तहृदयमें नित्य नये-नये वेशोंमें विकसित करता है। अतः निष्काम प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णको भजने तथा उनकी सेवाके साथ जीवनोत्सर्ग करनेपर भक्तको श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है। इस भक्तिमार्गके द्वार अखिल जगत्के लिए खुले रखे गये हैं। यहाँ सब समान हैं, क्योंकि भगवान् अपने भक्तकी 'वय' विद्या, बुद्धि, वैभव, आचरण, कुल, पराक्रम और सौन्दर्यके साथ-साथ भक्तके स्त्री-पुरुष भावोंको नहीं देखते। ध्रुवको वय, गजेद्रकी विद्या, पारधीका आचरण, कुब्जाका सौन्दर्य, विदुरका कुल, उग्रसेनका पराक्रम और शबरीकी जाति तथा बुद्धि क्या थी ? कुछ नहीं, पर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आपने उनके वय, विद्यादि आचरण नहीं देखे। केवल उनकी अपने प्रति सत्यनिष्ठा ही देखी, और उन्हें प्राप्त हुए। यही नहीं—'नाई नन्दा' जैसे बनकर उन (भक्तों) के कार्यसम्पादन किये। अस्तु, प्रभुको प्राप्त करनेके लिए नित्य प्रातः स्मरणीय—'व्यभिचार दुष्टाः' (भा०—१०।४७।५।९) होते हुए भी पावन गोपीजनोंकी भाँति 'तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ··· (भा०—१०।३० सम्पादित) प्रेमलक्षणा मधुर भक्ति, अर्थात् पुष्टिमार्गजनित भक्ति ही मुख्य साधन रूपमें कही जा सकती है क्योंकि भगवान् ब्रजेश्वर भक्तके स्वसाधनोंसे नहीं, कृपारूप अपने 'अनुग्रह'से दीनता-पूर्वक निरन्तर विलाप करते हुए विरहोत्पादन करनेसे प्राप्त होते हैं। अतः तद्गतभाव युक्त 'पुष्टिमार्ग' भगवत्प्राप्त्यर्थ विश्वविभूषित सहज एवं वन्दनीय मार्ग—'सम्प्रदाय' है।

श्रीवल्लभाचार्यजीने स्वसिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' द्वारा भक्तिका निर्णय करते हुए उसे 'पुष्टि' तथा 'मर्यादा' संज्ञाओंसे भी सुशोभित किया है। अतः जो भक्ति, साधननिरपेक्ष हो, भगवान्श्रीके केवल अनुग्रहसे स्वतः उत्पादित हो और जिसमें भगवान् स्वयं दयार्द्र होकर जीवपर अपने अनुग्रहकी अभिव्यक्ति करें, वह पुष्ट भक्ति तथा जिसमें साधनोंके सापेक्ष भजन-पूजनादि-द्वारा प्रभुको प्राप्त करनेका उपक्रम किया जाय, वह 'मर्यादा-भक्ति' कही गयी है। रागात्मिका भक्ति भी इसे कहते हैं। भगवान् अनन्त हैं, अतः उनके ऐश्वर्यादि गुणभाव भी अनन्त हैं—अवर्णनीय हैं। वे लीला हेतु सृष्टिका सर्जन करते हैं, अवतार धारण कर विविध रूपसे विहार करते हैं, जैसा श्रीवल्लभाचार्यने कहा है—'लीला ईश्वरीय विलासेच्छा' इति और यह ईश्वरीय विलासेच्छा रूप लीलाकी अभिव्यक्ति (जीवके) अन्तःकरणमें पूर्णानन्दके उदयकी सूचना है। सर्ग-विसर्गादि जैसे भगवल्लीलाएँ हैं, तद्वत् भक्ति, अनुग्रह वा पुष्टि भी पुरुषोत्तम भगवान्की लीलाएँ ही हैं। मर्यादाभक्तिमें भगवान् साधन परतन्त्र रहते हैं—स्वतन्त्र नहीं, क्योंकि तज्जनित भक्तिमें इन्हें अपनी बँधी हुई मर्यादाकी रक्षा करनी पड़ती है। पुष्टिभक्तिमें वे साधनाधीन न होकर आद्यन्त स्वतन्त्र रहते हैं। यहाँ उनका अनुग्रह ही नित्य लीलाका अनन्यतम बिलास है, जो श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीतामें विशिष्टताके साथ वर्णित किया गया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आचार्य श्रीवल्लभने पुष्टिमार्गकी विशिष्टता प्रदर्शित करते हुए अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य–अणुभाष्यमें कहा है—मर्यादा भक्तिमार्गमें जीव फलके लिए अपने कर्मोंके बन्धनमें रहता है। जैसा-जैसा वह कर्म करता है, तद्तद्वत् फल उसे मिलते हैं, क्योंकि **'कर्मानुरूपं फलं'** शास्त्रोंका सिद्धान्त है। पुष्टिमार्ग इससे भिन्न है। यहाँ जीवकृत शुभाशुभ कर्मोंके परखनेकी आवश्यकता नहीं। मर्यादाभक्तिमें शास्त्रविहित ज्ञानकर्मोंके अनुसार चतुष्टय रूप मुक्तिफल मिलता है। पुष्टिमार्गमें ज्ञानकर्मोंकी निरपेक्षता परमावश्यक होनेसे जीवका लक्ष्य केवल **विरहय्यकांक्षे** (भाव—६ । ११ । २५) बन जाता है। अतः पुष्टिमार्ग निराश्रित जीवोंके एकमात्र मोक्षका साधन नहीं, उसके उद्धारका उपाय हो जाता है, जैसा आप–आचार्यश्रीने कहा है—**पुष्टिमार्गोऽनुग्रहैक साध्यः प्रमाणमार्गाद् विलक्षणम्** (ब्र० सू०—अणु-भाष्य—४ । ४९) क्योंकि यहाँ जीव **'संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्** (भा०—१० । २९ । ३१) रूप गोपीजनोंका अनुगामी बन आगे बढ़ता है। आचार्य श्रीहरिरायजीने भी यही कहा है—**'समस्तविषयत्यागः सर्वभावेन यत्र हि समर्पणं च देहादेः 'पुष्टिमार्ग' स कथ्यते'**—इति 'प्रमेय रत्नार्णवे।

श्रीमद्वल्लभाचार्यने अपने मार्ग—संप्रदायकी पुष्टिके लिए 'चौरासी' ग्रन्थ लिखे, जिनमें मुख्य हैं—ब्रह्मसूत्र—अणुभाष्य, भागवत : सुबोधिनी टीका, तत्त्वदीप निबंध, षोडश ग्रन्थ इत्यादि। यह अपनायी गयी 'चौरासी संख्या' आपकी गूढ और मनोरंजक है। अतः चौरासी लक्ष्य योनि–लक्षित भ्रमणशील आपकी सम्पूर्ण भारतमें चौरासी बैठकें, जहाँ आपने भागवतके सप्ताह-पारायण किये, पुष्टि-मार्गीय-प्रणालीके अनुसार चौरासी सेवा-विधियाँ, चौरासी प्रकारकी भक्ति, जिसमें प्रेमासक्ति और व्यसन रूपसे त्रिविध निर्गुणकी स्थापना तथा सत्त्व, रज, तमकी सगुण भेदसे इक्यासी (८१) प्रकारकी भक्ति, अपने अनन्य चौरासी भक्तों द्वारा आपने प्रकट की है।

पुष्टिमार्गके तीन प्रमुख अंग हैं—ब्रह्मवाद, आत्मनिवेदन और भगवत्सेवा। तद्भूत वैष्णवी दीक्षामें शरण मन्त्रोपदेश तथा ब्रह्म-सम्बन्धके सम्यक् सुन्दर संस्कार विशेष रूपसे अपेक्षित हैं। जीव (मनुष्य) जब गलेमें तुलसीकी कण्ठी गुरु-द्वारा विभूषित कर श्रीमद्भगवद्गीता भणित शरणागतिका सार **'श्रीकृष्णः शरणं मम'**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सर्व धर्मोंका त्यागकर केवल मेरी शरणमें आ, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त करूँगा) का जप अहर्निश करता है, वह जीव भगवदनुग्रहका अधिकारी बनता है।

पुष्टिमार्गीय दूसरी दीक्षा 'ब्रह्म सम्बन्ध' मन्त्रपूत हैं। संसारमें रहते हुए जीव किस प्रकार स्वजनोंसे व्यवहार करे, यह विचार हृदयस्थ कर भगवत्प्रति सेव्य-सेवक-व्यवहारको स्थापित करता है। आरम्भमें वह प्रभुके प्रति आत्मनिवेदन करता है, जिससे उसका परमात्मा श्रीकृष्ण परब्रह्मके साथ सम्बन्ध स्थापित होता है। ब्रह्म-सम्बन्ध होनेके बाद निवेदित जीवको सेवाका अधिकार मिलता है। श्रीवल्लभोक्त ब्रह्मसम्बन्धी मन्त्रका सार है—मेरा रक्षण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उनसे हजारों वर्षोंका वियोग होनेके कारण पैदा हुए त्रिविधि तापों तथा क्लेशोंके होनेसे मेरा आनन्द तिरोहित हो गया है। ऐसी अवस्थामें मैं श्री गोपी-जन-वल्लभ भगवान् श्रीकृष्णको अपने देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण तथा इनके धर्म स्त्री, गृह, पुत्रादि कुटुम्ब, वित्त (धन) और आत्मा सभी कुछ (आपको) समर्पण करता हूँ। हे श्रीकृष्ण ! मैं आपका दास हूँ—इत्यादि....।' यह श्रीवल्लभोक्त पुष्टिमार्गका बीजमन्त्र है, जो जीवके हृदयमें श्रीनन्द, यशोदा तथा गोपियोंकी भाँति कृष्ण विरहको विभूषितकर प्रेममय नया भाव भरता है (निरोध लक्षण आचार्य) और :

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि।
पाखण्ड-प्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम॥

कृष्णाश्रय स्तोत्रकी ओर उन्मुख करता है।

तपस्या, त्याग एवं भगवत्-सेवा-पूत 'पुष्टिमार्ग' श्रीवल्लभाचार्यजीके द्वितीय पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी (स० १५७२ वि०) के समय अत्यधिक फला-फूला। वह भी श्री वल्लभमतानुसार सूक्ष्मरूपेण 'वेझड़की रोटी तथा टेटी', जो व्रजका मूल मेवा है, के साग, आचार भोग समपर्णके विचारसे सम्बन्ध न बनाये रख सका और श्री गो० विट्ठलनाथजीकी निपुण निगरानीमें 'साहित्यसंगीत-कला' के सम्मिश्रणसे अति भव्यरूप धारण करने लगा, फलतः अत्यन्त मधुरताके साथ-साथ उसमें लोकरञ्जकता तथा लोकाकर्षण काफी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बढ़ा। भगवान्‌के अङ्ग 'अधरं मधुरं, वदनं मधुरं' के सत्संगसे अब व्रज भी मधुराकृति हो गया था। फिर गोस्वामी विट्ठलनाथजीके कुशल हाथोंने उसे और बढ़ावा दिया। आपके सान्निध्यमें भारतीय ललित कलाएँ मानों भगवत्सेवाके लिए हाथ बाँधे खड़ी आपका मुँह जोह रही हों। भगवन्निष्ठ सुमधुर साहित्य, भाषा और संगीतसे उज्ज्वल बन उन्नतिके शिखरपर चढ़ गया था। आठ-आठ अंग रूप अन्य कीर्तनकलाविदोंके साथ श्रीसूरदास प्रभृति अष्टछाप कवि महानुभावोंका रागरंजित उद्‌गायन नित्य नये रूपोंमें उस भाषामें होने लगा, जिसके प्रति 'व्रजभाषा' के अन्तिम वरेण्य कवि स्व० 'सत्यनारायण' कविरत्नने कहा है :

'बरनन कौ करि सकै अहो तिहिं भाषा कोटी।
मचलि मचलि माँगी जामें हरि माँखन रोटी॥'

अन्य भारतीय ललित कलाओंके सम्मिश्रणसे, जिनमें प्रधान हैं—'ऋत्वनुसार हल्के गहरे रङ्गोंके वस्त्र, आभूषण, साज-सज्जा, और सामग्री (भोज्यपदार्थ) इत्यादिसे पुष्टिमार्ग तथा उसके भारतमें बिखरे देवस्थान (मन्दिर) अत्यधिक खिल उठे—बोलने लगे। अर्थात् साहित्य, संगीत, कलासे निखरा श्रृङ्गाररस सुन्दरताकी चरम सीमापर जा विराजा। अस्तु, श्रीमद्वल्लभाचार्य-चरण जहाँ पुष्टिमार्गके उत्पादक तथा स्थापक रूपमें नमन किये जा सकते हैं, वहाँ श्रीविट्ठलनाथ अपने पिताके पदचिह्नोंपर चलते उसके प्रवर्तक और रसपूर्ण विस्तारक कहे जा सकते हैं। सच तो यह है कि आपने मृत हो रही भारतीय ललित कलाओंको नये अनुकरणीय स्तरपर लानेके लिए अपनी अनोखी सूजबूझका अमृत पिलाकर उन्हें पुनर्जीवित ही नहीं किया, अपितु उन्होंने भगवत्सेवाके प्रति उन्मुख करनेका बेजोड़ परिश्रम भी किया। फलतः ललित कलाएँ पनपीं-चमकीं और भगवत्सेवामें नाना भाँतिसे सुन्दर, सरस योग देने लगीं। यह उसका स्वर्णयुग था।

[हिन्दी-विश्व-कोश]

●

तमन्नाओंमें उलझाया गया हूँ।
खिलौने देके बहलाया गया हूँ॥ —हसरत मोहानी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँ श्री श्री आनन्दमयीका उदार स्नेह

संवत् २०२५ मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा। नैमिषारण्य क्षेत्र। माँ श्री आनन्दमयीके द्वारा पुराण-मन्दिरमें महाराज-श्रीके द्वारा श्रीमद्भागवत महापुराणके प्रवचनका समापन-दिवस था। स्वयं श्री माँने मुझे अपने पास बुलाया। एक हाथमें चाँदीके सिंहासनस्थित शालिग्राम और दूसरा हाथ मेरी पीठपर। महाराजश्रीके पास जाकर मेरे हाथमें शालग्राम और अपना हाथ देकर माँने कहा—'दादा! तुम नारायणके साथ-साथ मुझे भी पिताजीको दे दो।' महाराजश्रीने नारायण और माँके हाथको अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और सिरपर रख लिया। बोले—'अच्छा माँ, मैं स्वीकार करता हूँ।'

भरी सभामें इस प्रसङ्गको देखकर जैसे आनन्दकी बाढ़ आ गयी हो। माँ का स्नेह, विनय, अमानित्व देखकर सारी सभा आश्चर्यचकित रह गयी।

—'दादा'

LIBRARY
No. .....
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
SAKA .A..

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फाटक खोलो !

[तमिल वेद द्राविडाम्नाय अथवा दिव्य-प्रबन्धके नामसे सुप्रसिद्ध ग्रन्थ-रत्नके श्रीकाञ्चीप्रतिवादि भयंकर अण्णंगराचार्यकृत संस्कृत विवर्तके आधारपर ।]

एक दिन प्रत्यूषकालमें गोपियाँ नन्द बाबाके महलमें पहुँच गयीं । बाहरके द्वारपालने आज्ञा दे दी; परन्तु अन्दरके द्वारपालने रोक दिया । अब गोपी और द्वारपालका संवाद सुनिये—

गोपी : कृपया यह नवरत्नजटित फाटक खोल दीजिये !

द्वारपाल : व्रजमें चारों ओर आतंक छाया हुआ है । फाटक खोलनेका अभी समय नहीं है । भला, इस समय फाटक खोलनेके लिए कहनेवाले आप लोग कौन हैं ?

गोपी : ओहो ! क्या आपने यह नहीं सुना है कि भयापहारी कोटि-कोटि ब्रह्माण्डधारी मुरारि मनमें हों तो भय और आतंक क्या ? भयभंजन भगवान्‌के सान्निध्यमें रंक आतंकके लिए, शंका-कलंकका अवकाश कहाँ ?

द्वारपाल : रामावतारके समय सत्ययुगसे सन्निहित त्रेतायुग था, श्रेष्ठकाल । पिता थे दशरथ । पुत्र थे महावीर धीर मर्यादा-पुरुषोत्तम । नगरी थी प्रतिभटविमुक्ता अयोध्या । उपदेष्टा थे महाज्ञानी वसिष्ठ आदि । नागरिक थे धर्मात्मा और भगवान् रामके मंगलाशंसी । अयोध्याके कीट-पतंग, तृण, कण भी रामके दुःखमें दुःखी और सुखमें सुखी होते थे । वृक्ष भी रामरक्षादक्ष थे । इसलिए उस समय भयका कोई प्रसंग नहीं था, आतंककी छाया नहीं थी । और सुनो ! अब तो कलियुगसे सन्निहित द्वापरकाल है । पिता नन्द चींटी मरनेसे भी घबराते हैं । पुत्र परम सुकुमार छैलचिकनियाँ है । देश अहीरोंका और राजा कंस । उगती घास भी विषके विलाससे संपृक्त हो जाती है । यहाँके छकड़े, बगुले और बछड़े भी प्रतीप हो जाते हैं । ऐसी परिस्थितिमें निःशंक आतंकका साम्राज्य न हो तो और क्या होगा ?

गोपी : महात्मन् । हम सुकुमारी कुमारी रागवती वनिता हैं । हम अबलाओंसे क्या भय ?

द्वारपाल : सत्य है । शूर्पणखा भी तो अबला ही थी । पंचवटीमें द्वार और द्वारपाल न होनेसे ही तो वह अपूर्व अनर्थकी सृष्टि कर सकी ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोपी : क्यों जी ! उस निशाचरीके साथ हम लोगोंकी तुलना क्या युक्तियुक्त है ? आपके द्वारा उक्त क्या दोषमुक्त है ?

द्वारपाल : अजी, मुझे यह सब भेद-विभेद ज्ञात नहीं हैं। पूतना भी तो गोपीका ही वेष धारण करके आयी थी। आत्मा पूतना, आकृति यशोदा क्या आप लोगोंको ज्ञात नहीं है ?

गोपी : स्वामी ! पूतना तो उद्दण्ड धींगरी थी। हम तो छल-छद्मसे अनभिज्ञ प्रेमपालिका बालिका हैं।

द्वारपाल : क्या आप लोगोंने वत्सासुरकी चर्चा नहीं सुनी है ! वह वयका छोटा मनका खोटा क्या विश्वसनीय था ?

गोपी : महात्मन् ! ऐसा मत कहो। वे थे कंसके भेजे नृशंस असुर। एकान्तमें अकेले आते थे। हम हैं झुण्डकी झुण्ड। थोड़ी देरमें भुवन-भास्कर भगवान् आदित्य उदयाचलपर आरूढ़ होनेवाले हैं। हमसे भय मत करो ! हमपर दया करो !

द्वारपाल : विवेक कहता है, एकसे भयंकर होते हैं अनेक। खर-दूषणकी चौदह हजार सेना देखकर रामको भी क्रोध आ गया था। अच्छा जी, यह तो बताइये कि आप लोगोंके यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है ?

गोपी : शोभन है यह प्रश्न। सम्भव है यह जिज्ञासा हमारी पिपासा पूर्ण करे। अच्छा, तो सुनिये ! हम एक विशेष पुरुषार्थकी प्राप्तिके लिए यहाँ आयी हैं। अभिज्ञ नन्दनन्दनने प्रतिज्ञा की है उसे पूर्ण करनेकी। हमें देखते ही वे अवश्य देंगे।

द्वारपाल : परन्तु उन्होंने मुझसे तो कुछ नहीं कहा। मैं द्वारपालनकर्ममें नियुक्त उनका आयुक्त हूँ। क्या मेरा सबको यथेच्छ प्रवेशका निदेश देनेके लिए यहाँ निवेश किया गया है। आप लोगोंके अन्तःकरणकी शुद्धिका पता लगाये बिना मैं भवनके अन्तर्देशमें प्रवेश करनेकी अनुमति नहीं दे सकता।

गोपी : महात्माजी ! हम आपके लिए शोधनीय अथवा बोधनीय कोई नूतन जन नहीं हैं। हम हैं शुद्ध चेतन, प्रेमपरिपूतान्तःकरण। न हमें उनके अतिरिक्त और कोई प्राप्तव्य है, न प्रापक साधन। न उनके सिवा कोई वित्त है, न कहीं चित्त लगाना है। उपायान्तर और उपेयान्तरको हम छोड़ चुके हैं। उन्हींकी प्रशंसा उन्हींकी मंगलाशंसासे हमारा हृदय भरपूर है। और कोई बुद्धि-शुद्धि हम नहीं जानतीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वारपाल : अच्छा, सच-सच बताओ। अन्दर जाकर क्या करोगी ? आप लोगोंके लिए जो परम पुरुषार्थ-दान उन्होंने कल ही देनेको कहा है, वह है क्या ?

गोपी : हम वहाँ जाकर 'गोकुलपते तव सुप्रभातम्'का गान करेंगे।

भो कृष्ण ! भो माधव ! भो मुकुन्द ! भो नन्दसूनो ! भगवन् ! मुरारे ! भोगीन्द्रभोगात्मकतल्पतस्त्वं उत्तिष्ठ जागृह्यनुकम्पमानः ॥

यही हमारा परम पुरुषार्थ है। विश्वामित्र भी भगवान् रामचन्द्रको इसी प्रकार जगाकर प्रातःकालीन मंगलाशासन करते थे।

द्वारपाल : नारायण, नारायण ! यह क्या कहा आप लोगोंने ? शयनके समय अन्तःप्रवेश ही दुरभिनिवेश है। कृष्ण ! कृष्ण ! यह तो पाप है। फिर सोतेसे जगाना उससे भी बड़ा पाप है। क्या आप लोगोंने रामायण नहीं सुनी ? सीताजी बादमें पछताया करती थीं—'हाय ! हाय ! आर्यपुत्र सुख-शयन कर रहे थे मेरे उत्सङ्गमें, परन्तु वायसके आघात करनेपर मैंने उन्हें जगा दिया।' यदि शयनकालीन सौन्दर्यका दर्शन करनेके लिए आप भीतर प्रवेश करना चाहती हों तो यथाकथञ्चित् अवकाश मिल भी सकता था; परन्तु सोते हुएको उठानेके लिए ? राम-राम ! यहाँ खड़ी होने योग्य नहीं हो। शीघ्र यहाँसे भाग जाओ।

गोपी : महात्मन् ! आप केवल शब्दोच्चारणसे ही बड़ा धर्म प्राप्त करेंगे। बस, जरा-सा बोल दीजिये—'भीतर जाओ ?' आपको बड़ा पुण्य होगा। आप अपने पुण्यकी उपेक्षा करके हमें क्यों रोक रहे हैं ? 'ना' बोलना छोड़ दो।

ऐसा कहकर सब गोपियाँ द्वारपालके चरणोंपर गिर पड़ीं। द्वारपालका हृदय करुणासे भर आया। उसने कहा—'गोपियों ! अच्छी बात है, अन्दर जाओ। मैं आप लोगोंको रोकता नहीं। परन्तु आप अपने ही हाथोंसे फाटक खोल लो।

गोपी : नहीं महाशय, हम अपने हाथों फाटक नहीं खोल सकतीं; आप स्वयं ही खोल दें। मिलनेवाले स्वयं ही प्रवेश देते हैं तब स्वरूपके अनुरूप होता है। रोकनेवाला अपने हाथों प्रवेशका कार्य सम्पादन करे तो बहुत मधुर होता है। विभीषणकी शरणागतिके समय प्रतिषेद्धा थे सुग्रीव और अनुमन्ता थे मारुति। स्वीकारका निर्णय होनेपर भगवान्‌ने सुग्रीवको ही आदेश दिया कि तुम विभीषणको ले आओ, हनुमानको नहीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूर्वोक्त संवाद श्री श्री गोदा अम्बाके भक्तिभावित हृदयमें हुआ है। गोपी भी उनका हृदय है और द्वारपाल भी उनका हृदय। नन्दभवन भी उनका हृदय और नन्दनन्दन भी उनका हृदय। इस पूरे संवादका उल्लेख 'तिरुप्पावै दिव्य प्रबन्ध'के तमिलभाषीय एक गीतिमें हुआ है। श्री काञ्चीप्रतिवादिभयंकर अण्णंगराचार्यने इसे संस्कृतके एक श्लोकमें अनूदित किया है।

अस्मन्नाथाग्रनन्दप्रभुवरभवनद्वारपालौ ! दयेथाम्
ह्यः प्रप्त्यश्रावि सेवावितरणमनुकम्पात्मना नोऽच्युतेन।
वालाः शुद्धान्तरङ्गा वयमिह शयनोत्थानगीतार्थमाप्ताः
नो रोद्धव्याः कृपार्हा इति कथितवती भातु गोदा मदन्तः ॥१६॥

अब पाठक स्वयं विचार करें कि ऐसी भक्तशिरोमणि श्रीगोदाम्बाके हृदयमें द्वारपाल गुरुने कपाटोद्घाटन किया होगा और उन्होंने अन्तःपुरमें प्रवेश करके श्रीकृष्णकी शयनमुद्रा देखी होगी और भावमग्न होकर 'उत्तिष्ठ गोकुलपते तव सुप्रभातम्' इत्यादि मंगलाशासन किया होगा तब उन्हें किस आनन्दकी उपलब्धि हुई होगी। श्रीकृष्ण भगवान्‌की वह स्मितयुक्त कटाक्षनिपेक्ष आप सबका मंगल करे।

●

कैसा पर्दा !

जाहिरमें कहीं रहते हैं, बातिन में कहीं हैं।
ये वज्ब उन्हीं में है, कि हैं और नहीं हैं॥
रहते हैं ख्यालों में, निगाहों में दिलों में।
इस पर भी ये दावा है, कि हम पर्दानशीं हैं॥
मन्दिर में या मस्जिद में, पुकारूँ मैं कहाँ तक।
दे दीजिए आवाज, अगर आप कहीं हैं॥
बाकी रहा न इश्क में, झगड़ा मनो तो क्या।
जब उनको नजरे गौर से, देखा तो हमीं हैं॥

—शारदाप्रसाद नायक

जाहिर = प्रत्यक्ष, परोक्ष, लख। बातिन = परोक्ष, अलख। वज्ब = कला हैं = साकार। नहीं = शून्य। पर्दानशीं = अलख। इश्क = प्रेम, लगाव। नजरे गौर = अन्तरदृष्टि, बारीकीसे देखनेपर। हमीं = देहसे पृथक् निज रूप।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाग्य बनाम पुरुषार्थ

बाबूलाल 'श्रीमयंक'

भाग्यका खेल सब तरफ देखा जाता है। मूर्ख हो या विद्वान्, धनी हो या निर्धन दाता हो या भिखारी सब उसके लिए रोते हैं,—विलखते हैं और वाह वाह भी करते हैं—खुश होते हैं, उछलते हैं। कोई कहता है—अरे! मेरा भाग्य खुल गया, आज मुझे सैकड़ों रुपये मुनाफेमें मिल गये, कल इतने और मिल जायेंगे, भाव चढ़ रहे हैं। कोई कहता—मेरा भाग्य तो फूट गया, मैं लुट गया, मेरा सर्वस्व चला गया, मेरे समान अभागा कौन होगा? कोई कहता-मेरे भाग्यमें सन्तान ही नहीं है, किसके लिए मेहनत करूँ, किसके लिये कमाऊँ। भाई रिश्तेदार सब स्वार्थके ही सम्बन्धी हैं। दैवने जो लिखा है वही होगा उसे कोई टाल नहीं सकता। कर्मोंका फल तो मिलेगा ही अब इसके करने-न-करनेसे क्या होगा।' सर्वत्र यही पुकार सुनायी देती है। इसीका आज संसार में कुहराम मचा हुआ है। जो देखो वह भाग्यके हाथ सिर देकर रो रहा है, हँस रहा है और पछता रहा है।

सफलता और असफलताके पीछे हम भाग्यकी दुहाई देकर सन्तोष कर लेते हैं; लेकिन यह जाननेका प्रयत्न नहीं करते हैं कि भाग्य नामकी वस्तु क्या है। और न हमने इसे जानने, देखनेका प्रयास ही किया है। यदि भाग्यके भरोसे ही सब कुछ हो जाता है तो फिर कर्म करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। यदि भाग्य नामका आदमी हमारा संचालक है तो हमारे विना कहे सुने आवश्यकताओंकी पूर्ति क्यों नहीं कर देता है। हम दिन रात क्यों कष्ट उठाते हैं। ऋषियोंके इतने सारे तर्क-प्रमाण व्यर्थ हैं जो कर्म करनेपर जोर देते है। तुलसीदासजी भी यही कहते हैं 'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।' यदि भाग्य ही सब कुछ है तो हमारा पुरुषार्थ, कर्म और सुख भोगके लिए किया गया प्रयत्न ही व्यर्थ है। वही अपने आप सब-कुछ दे देगा तो इतने सारे कष्ट उठानेकी क्या जरूरत है।

किन्तु भाग्यकी दुहाई देना व्यर्थ है। यह निश्चित है कि आजका किया हुआ पुरुषार्थ भाग्यके रूपमें फलित होकर सामने आता है। कर्म ही प्रबल है, वही हमारा भाग्य है; क्योंकि भाग्य उन्हींकी सहायता करता है; जो स्वयंकी सहायता करते

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। अतः तुम स्वयं अपने भाग्यके निर्माता हो। जिसमें पुरुषार्थ करनेकी क्षमता है, उसके प्रति निष्ठा है तथा करनेकी प्रबल आकांक्षा है, भाग्य उसके आगे-आगे चलता है। ऐतरेय-ब्राह्मणमें यही कहा गया है; जिसका भाव इस प्रकार है—'जो बैठा है उसका भाग्य बैठा हुआ है, जो उठा है उसका भाग्य उठा है जिसने चलना (कर्म) प्रारम्भ कर दिया उसका भाग्य भी चलने लगा है। अतः हे इन्द्र ! हमेशा चलते रहो कर्म करते रहो। कर्मकी प्रबलतामें ही भाग्य पुष्ट बनता है। बिना कर्मके भाग्य भरोसे रहोगे तो कुछ नहीं होनेका।

भाग्यकी परिभाषा कर्मकी निष्ठाके अभावमें प्रारम्भ होती है। मूर्ख आलसी और कर्तव्य हीन मनुष्यके लिए भाग्य एक सहारा है। विश्वासी उद्यमी पुरुष कभी भाग्यके भरोसे नहीं रहते, असफलताके बावजूद भी वे उसमें लगे रहते हैं। मनुष्य जब कर्म करनेसे उकता जाता है या पूर्ण रूपसे फल मिलनेकी आशा नहीं रहती या उसके प्रति सजग रहते हुए भी असफलता हाथ लगती है—तब उसके मुँहसे भाग्य शब्द सुननेको मिलता है। भाग्य मनुष्यके लिए कलंक है, जैसे चन्द्रमाके बीच काला धब्बा। वह ग्रहण है जो उन्नति रूपी सूर्यको ग्रस लेता है। वह निराशाकी शरद् ऋतु है जिसमें आशा रूपी बादल विलीन हो जाते हैं और वह ग्रीष्मकी तपन है जो उत्साह रूपी नीरको सोख लेती है।

भाग्य और कुछ नहीं वह केवल, हमारे कर्मका एक प्रतिबिम्बमात्र है जैसे दर्पणमें हमारा बिम्ब नजर आता है वैसे ही भाग्यके रूपमें जो फल हमारे समक्ष आते हैं वे सब उसकी प्रतिच्छायामात्र है। जिस रूपमें हम हैं या हमारी उन्नति हो रही है, अथवा हम सुखी, दुःखी हैं ये सब हमारे पिछले कर्म हैं। हमारी स्मृतिके भण्डारमें ये संस्कार रूपसे अविच्छिन्न रहते हैं तथा आवश्यकताके अनुकूल हमारे सामने इन्हें भेजते रहते हैं। वे इतने गहरे होते हैं कि हम अज्ञानतावश इनके सम्बन्धमें अनभिज्ञ रहते हैं। इस भाग्यका सम्बन्ध हमारे कई जन्मोंसे है। यह वह माध्यम है जो पिछले किये गये कर्मोंके फलोंको हमारी वर्तमान चेतनाके समक्ष लाकर छोड़ देता है। अरविन्दने कहा है—'हमारे पिछले सभी कर्म चेतना हैं, जिन्हें सूक्ष्म योग-बुद्धिसे चल चित्रकी भाँति देखा जा सकता है।'

कर्म दो प्रकारके होते हैं (१) क्षणिक, जिनका फल शीघ्र मिल जाता हैं। (२) स्थायी कर्म चेतनाके गहरे प्रदेशमें चले जाते हैं। वे शनैः शनैः परिपक्वताको प्राप्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होते रहते हैं और उनका रूप संस्कारोंमें बदल जाता है। समय आने पर वे किसी भी जन्ममें फलित हो सकते हैं। अज्ञानतामें उसके परिणामको भाग्यके सिरपर मढ़ देते हैं। सब कार्य हमारी चेतनामें बड़े व्यवस्थित ढंगसे होते रहते हैं तथा यही हमारे जीवनको यन्त्रकी तरह चलाते हैं। मनुष्य इतना विकसित एवं स्मृतिमें इतना समृद्ध नहीं होता कि प्रत्येक बातको ठीक-ठीक याद रख सके। वह जो आज करता है, वह उसे कल भूल जाता है और परम्परानुगत अपनी जीवनयात्रामें आगे बढ़ जाता है; लेकिन होता यही है कि पिछले दिन अथवा जन्ममें जो विचार, भाव और कर्म पुरुषार्थके रूपमें अर्जित किये गये वे ही हमारी जीवनयात्रामें सहायक बनते हैं। अन्तर इतना ही रहता है कि किन्हींका फल देरसे और किन्हींका जल्दी मिल जाता है।

यही फल हमें कभी इस संसारमें देखनेको मिलता है। उदाहरणके लिए मान लिया जाये—एक आदमी हमेशा बुरे कर्म करता हुआ भी सुखी है। उसके पीछे ठोस उत्तर यही है कि उसके गत जन्मके कई सद्कर्म शेष हैं। वे इतने प्रबल हैं कि वर्तमानमें किये गये असद्कर्मोंका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है; किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इन असद्कर्मोंका कोई फल मिलेगा ही नहीं ? अवश्य मिलेगा। ये सब कर्म चेतनामें अवस्थित हो जायेंगे। जब सद्कर्मोंका प्रभाव पूर्णतः क्षीण हो जायगा तब ये ही कर्म आधि-व्याधि दुःख रूपमें उसे घेर लेंगे। पुरानी पूँजीके समाप्त होते ही नयी पूँजीका खर्च प्रारम्भ हो जाता है। कबीर भी तो यही कहते हैं—

जब तक तेरे पुण्यका भरा है भण्डार।
'कबिरा' करले तू पाप हजार॥

दूसरा उदाहरण लीजिये—

एक पाठशालाकी एक कक्षामें दस बालक पढ़ते हैं। उनमें कोई इतने मूढ़ बुद्धि होते हैं कि कई बार समझानेपर भी नहीं समझते। कोई इतने तेज होते हैं कि इशारे मात्रसे बात हृदयङ्गम कर लेते हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि इस कार्यमें उनका पिछला कर्म सहायक है; जो इस समय आगे बढ़ा रहा है। स्वामी विवेकानन्द, शंकराचार्य, सिकन्दर ईसामसीह और अनेक महापुरुष जो अल्पायुमें ही इतने महान् कार्य कर गये इसके मूलमें उनके कई जन्मोंका पुरुषार्थ था जो चरमावस्थापर पूर्णरूपसे फलित हुआ। यह भी निश्चित है कि जो इस जन्ममें दुराचारी है, वह अपने सद्कर्मोंसे अगले जन्ममें सदाचारी बन सकता है। पिछले कर्मकी प्रबलता तभी फलित होती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है, जब इस जन्ममें उसके अनुकूल कर्म करनेका अवसर आता है। जब अनुकूल अवसर आता है, तब तब मनुष्यके जीवनमें भयानक और महान् परिवर्तन आते हैं। ऐसे ही उदाहरण अंगुलिमान, रत्नाकर डाकू (वाल्मीकि) बिल्वमंगल आदि हैं।

इन सबमें वर्तमान पुरुषार्थका ही अधिक महत्त्व है। यदि पिछले कर्मको अनुकूल होनेका अवसर ही नहीं दिया जायगा, तो वह भुने हुए बीजकी तरह ही रह जायगा। मान लो कभी फलित भी हुआ तो क्षणिक प्रभाव दिखाकर चेतनासे लुप्त हो जायगा। यदि हम वर्तमान पुरुषार्थके प्रति उदासीन लापरवाह, आलसी, कर्त्तव्यहीन हो गये तो निश्चित है कि आपका भाग्य पिछले कर्मोंको भोगनेके लिए बाध्य करेगा। फिर उसे टालनेकी कितनी ही कोशिश करो वह दैव तो धरना देगा ही। कोई भी वस्तु या रोग प्रभावशील होता है जब उसका प्रतिद्वन्दी कमजोर हो। योगवासिष्ठमें इस बातकी पुष्टि की गयी है कि वर्तमान पुरुषार्थसे पिछले कर्मोंको क्षीण किया जा सकता है। अतः मनुष्यको सुखी सम्पन्न बननेके लिए सद्कर्म हेतु सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

उपरोक्त विवेचनसे यही सिद्ध हुआ कि भाग्य केवल शत्रु, कर्तव्य हीनताका आश्वासन मात्र है। इस जीवनमें पुरुषार्थ ही हमारा निर्णायक तत्त्व है। वर्तमानकी प्रगति, अप्रगतिका लेखा-जोखा भी यही है। नये पुराने कर्मोंके द्वन्द्वसे ही हमने भाग्यका निर्माण किया और इस द्वन्द्वके बीच जीवनकी गाड़ी चल रही है।

पुराने संस्काररूप कर्मोंको क्षीण करनेके लिए सतत उद्योग करना चाहिए। सत् शास्त्र, सत्संग और सत्पुरुषोंका सान्निध्य प्राप्त करना चाहिए। इस हेतु आत्मकल्याणकी प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ हैं। अतीतको भूल जायँ, हमें वर्तमानको सम्हालकर सत् पुरुषार्थकी ओर अग्रसर होना है। अच्छे भविष्यके गर्भमें क्या हो सकता है यह पुरुषार्थपर ही निर्भर करता है; जिसके लिए हम स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्रताका दुरुपयोग नहीं होना चाहिए तथा स्वयंको अपने भाग्यका निर्माता बनना चाहिए। परम पुरुषार्थकी तेजस्वी अग्निसे पुराने असद् कर्मोंको दग्ध करके उसके स्थानपर सद्कर्मोंको प्रतिष्ठित करना पुरुषार्थी व्यक्तिका ही काम है। वे ही सही अर्थोंमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके अधिकारी बनते हैं। पुरुषार्थी व्यक्ति कितनी ही बाधाएँ, दुःख और जीवनमें अनेक मोड़ आनेपर भी निश्चल चट्टानकी तरह रह सकता है। उसे भाग्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने पथसे कितना ही डिगानेका प्रयत्न करे वह दृढ़ बना रहता है। अनुकूल अवसर आनेपर उसे पछाड़ देता है।

अतः भाग्य नामकी वस्तु न तो इस जीवनमें है, न अगले जन्ममें निर्मित होगी; बल्किहमारे अगले पिछलेका द्वन्द्व ही भविष्यका निर्माण करेगा। हमारी विस्मृति, अज्ञान उसके अन्तर्निहित सफलता, असफलताका भाग्य नामकी संज्ञा देता है। शाप, अभिशाप, वरदान, सुख-दुःख आदि हमारे पुरुषार्थके रूपमें किये गये कर्म हैं। उन्हींकी क्रमबद्ध शृङ्खला इस जीवनको घसीटे जा रही है। पुरुषार्थपर विश्वासकर भाग्यका नाम मानस शब्दकोशसे निकाल देना चाहिए। हमारा जीवन सतत पुरुषार्थका ही परिणाम उसकी अविच्छिन्न धारा है। चट्टानकी तरह आपत्तियाँ जब मेघ धाराकी तरह बरस पड़ती है; उनको सहन करते हुए अनुकूल वातावरणकी धैर्यके साथ प्रतीक्षा करना ही पुरुषार्थ है। वही विजयी जीवन है। चाहे पहले, अब या बादमें हो, जीवनकी सुख समृद्धिका आधार है। मार्ग-विहीन अवस्थामें भी उसकी प्रबलता अनुकूल अवसर—प्रगतिकी सही दिशा निर्धारित करती है। किया गया पुरुषार्थ कभी विनष्ट नहीं होता। गीताकी स्पष्ट घोषणा है।

पार्थ नैवेहनामुत्र
विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्
दुर्गतिं तात गच्छति॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव
ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य
शब्द ब्रह्माऽतिवर्तते॥

वस्तुतः आजका किया गया पुरुषार्थ कभी निष्फल न होगा और वही हमारा भाग्य है। तभी तो ठीक कहा है—"भाग्य बनाम पुरुषार्थ, पुरुषार्थ बनाम भाग्य"। ●

ज्ञानी और भक्त

एक दिन एक भक्तने श्रीउड़ियाबाबा जी महाराजसे प्रश्न किया कि महाराज! इन जिन्दगी भर दिमाग चाटनेवाले ब्रह्म-ब्रह्मका प्रश्नोत्तर करनेवालोंको आप रसोपासक भक्त क्यों नहीं बना देते? महाराज—क्या करूँ बेटा! इनमें श्रद्धा नहीं है।

एक दिन वेदान्तियोंने श्रीमहाराजसे कहा—क्या आप इन भक्तोंको जीवनभर झाँझ बजानेके चक्करमें रखेंगे, इन्हें ज्ञानका उपदेश क्यों नहीं करते? महाराज—क्या करूँ बेटा! इनमें वैराग्य और विवेकमें रुचि तो है ही नहीं। ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संत श्रीनन्ददासका होली-वर्णन

शिवनाथ दुबे, साहित्यरत्न

ऋतुराज वसंतके चरण रखते ही मेदिनी पुलकित होकर मुस्कराने लगती है। सुकोमल पल्लवयुक्त अशोक, मोहक कर्णिकार, पलाश और नागकेशर आदि सभी पादपवृन्द पुष्पित हो जाते हैं। सरोवरमें कमल खिल उठते हैं और आम्र-मञ्जरियोंकी मादक सुरभि सर्वत्र फैलने लगती है। भ्रमर गुञ्जार करने लगते हैं और कोयल पञ्चम स्वरमें अलापने लगती है। हृदयमें स्पन्दन एवं शरीरमें रोमाञ्च होने लगता है। वासन्ती पवन मस्तीसे डोलता हुआ उन्मद सन्देश सुनाने लगता है।

सचमुच ऋतुराजका प्रभाव मत्तकर एवं आनन्दप्रदायक होता है। इसी कारण सहस्रों वर्ष पूर्वसे ही इनका यशोगान गाया गया है। संस्कृतके उद्भट विद्वानों एवं महाकाव्य-कालके कवियोंने तो इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इतना ही नहीं, शताब्दियोंसे लोकगीतोंमें भी इनकी कीर्ति सुननेमें आती है। वीतराग महात्मा पुरुषोंतकने इनका यश-वर्णन किया है और प्रभुपर अर्पित होनेवाले भक्तोंने तो वसंतोत्सवका माहात्म्य-गान प्रभुकी मनोहर लीलाके मिस खूब किया है।

करुणावरुणालय जगत्प्रभुके परम प्रेमी तो विश्व-रङ्ग-मञ्चकी प्रत्येक घटित घटना एवं प्रत्येक यवनिकामें अपने प्राणवल्लभ प्रभुकी ही मधुर लीला एवं उन्हींके मङ्गलमय करकमलोंके दर्शन करते हैं। वैसे भक्तोंने श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि अवतारोंकी लीलाओंको गा-गाकर अपना जीवन कृतार्थ किया है। श्रीनन्ददासजी ऐसे ही प्रेमी भक्तोंमें थे। उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी जिस मधुर-मङ्गलमय लीलाका अपने मानस-नेत्रोंसे दर्शन किया, उसका मधुर व्रजभाषामें अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। श्रीकृष्णकी अन्य लीलाओंके साथ होली-वर्णनके भी उनके पद अत्यन्त अनूठे हैं। उनके कुछ पदोंके अंश देखकर भी हम वसंतोत्सवके साथ भगवल्लीला-चिन्तनका आनन्द-लाभ कर सकते हैं। देखिये,

एक व्रजबाला कहती है कि सखि, ज्यों-ज्यों वसंत-बहार छाती जा रही है, त्यों-त्यों श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका मन बहक रहा है। ऐसा क्यों न हो, बाघके नखकी भाँति पलाशके फूल खिल उठे हैं और वैसे ही काननमें सुरभि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फैलने लगी है। कोयल, मोर, शुक, सारस, खञ्जन और भ्रमरोंको देखकर नेत्रोंमें ललक उत्पन्न हो गयी है।

लहकन लागी बसन्त बहार सखि, त्यों-त्यों बनवारी लाग्यौ बहकनि।
फूले पलास नख-नाहर कैसे, तैसोई कानन लाग्यौ री महकनि।
कोकिल, मोर, सुक, सारस, खञ्जन, भ्रमर देखि अखियाँ लगीं ललकनि।

ऐसे मादक-कालमें व्रजाङ्गनागण श्यामसुन्दरसे होली खेलनेकी तैयारी कर रही हैं। एक व्रजबाला कहती है कि 'आज सबोने श्यामसुन्दरके साथ होली खेलने चलना चाहिए। बड़े-बड़े पात्रोंमें रङ्ग भरकर पिचकारियोंसे छोड़ा जाय और साथ ही अबीर भी उड़ायी जाय। होली गाते हुए खूब आनन्द लूटा जाय।'

आजु साँवरे-सलोने सौं होरी खेलन जैऐ।
बड़े-बड़े माँट भराइ रङ्ग सों, अबीर गुलाल उड़ैऐ।
'नन्ददास' प्रभु होरी गावत, आनन्द-सिन्धु बढ़ैऐ।

उधर नन्दलाल श्रीकृष्ण होली खेलनेके लिए घरसे निकल पड़े हैं। उन्होंने अपने साथ रूप-गुण-सम्पन्न रंगभक्त ग्वालबालोंको ले लिया है। स्वर्णके मटकेमें रंग भर लिया है और हाथमें रत्नजटित पिचकारी ले ली है। उनकी झोली अबीरसे भरी है।

निकसि कुँवर खेलने चले, मोहन नन्दके लाल,
रङ्गन-रङ्ग हो-हो होरी।
सङ्ग लै रङ्ग-भीने ग्वाल, सब गुन रूप-रसाल,
रङ्गन-रङ्ग हो-हो होरी॥
कञ्चन माट भराइ सोंधें भरीं कमोरी,
रतन-जटित पिचकारिन, अबीर भरें झोरी।
रङ्गन-रङ्ग हो-हो होरी॥

मनमोहन श्यामसुन्दरको देखकर एक सखी श्री वृषभानुकुमारीके पास दौड़ी गयी। उसने कहा—'हे सखि, व्रजमें फाग खेलनेके लिए मोहन निकल पड़े हैं। अबीर-गुलाल फैली हुई है। ऐसा लगता है, मानों स्वयं अनुराग उमड़ पड़ा है। कटिमें पीताम्बर कसकर श्रीकृष्ण अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं। उन्होंने लाल कछनी काछ रखी है, जैसे रंग निचोड़कर रखा हो। उनके सिरपर मोर-मुकुट शोभा दे रहा है। उनकी बांकी चितवन और मुसकान हृदय हर लेती हैं।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एरी सखी, निकसे मोहन लाल, खेलन व्रजमें फागु री ।
रङ्ग हो-हो होरी ।।
एरी सखी, घुमड्यो अबीर, गुलाल मनु उनयों अनुरागु री ।
सखि, सोभित मदन-गुपाल कटि बाँधें पट सोंहनो ।।
सखि कछनी काछें लाल, लाल निचोयों रङ्ग मनों ।
सखि मोर-मुकुट छबि देति बंक-दूगन हँसि देखनों ।।
सखि सबको मन हरि लेति, ऐन-मैन मनो पेखनों ।

इसी बीच भागी-भागी दूसरी सखी श्रीराधाकिशोरीके पास आयी और उनसे खीझकर होलीकी सन्ध्याका प्रभाव व्यक्त करती हुई होली खेलने चलनेका प्रेमाग्रह करती है ।

अरी चलि नवल-किसोरी गोरी, भोरी, होरी खेलन जाँइ ।
ऐसी नव जामिनि लखिके भामिनि, कैसैं भवन सुहाइ ।।

दूसरी सखी आग्रह कर ही रही थी कि तीसरी सखी और आ गयी । वह अत्यन्त विनयपूर्वक श्री किशोरीजीसे तत्काल होली खेलने चलनेके लिए अनुरोध करने लगी । सखी बोली—

हरि संग, होरी खेलन आज, अरी, चलि वेगि छबीली ।
निकस्यो मोहन साँवरो हो, फागु खेलत व्रज माँझ ।।
घुमड्यो अबीर, गुलाल गगन में, मानो फूली साँझ ।
बाजत ताल, मृदंग, मुरज, डफ कही न परत कछु बात ।।
रंग सों मनि ग्वाल-बाल सब, मानो मदन बरात ।।

पवित्रतम प्रेमकी मंजुल मूर्ति लाड़िलीजी अपनी सखियोंका आग्रह और अनुरोध अस्वीकार न कर सकीं । वे परागसे अपनी झोली भरकर होली खेलनेके लिए चल पड़ीं । उनके साथ सौन्दर्यमयी रंगमत्त बहुत-सी सखियाँ गोकुलकी वीथियोंमें सुमधुर ध्वनिमें होली गाती हुई जा रही थीं । उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानों भस्म हुआ कामदेव पुनः जीवित होना चाहता है ।

चली हैं कुँवरि राधिका खेलन होरी ।
पंकज पराग भरि लई नव-झोरी ।।
रंग-रली बहुत सोहैं अली ।
सफल करी सब गोकुल गली ।।
गावत सरस आछी मीठी धुनि ।
हरि जो जार्‌यो मनोज जियौं चहै पुनि ।।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्रजबालाओंका यूथ-का-यूथ सज-धजकर श्यामसुन्दरको देखनेके लिए चल पड़ा। वे सभी नयी सुन्दर एवं चंचल हैं तथा विविध रगके वस्त्राभूषणोंसे सजी हुई मनोहर स्वर्णिम पिचकारी लिये हैं। बड़े-बड़े नेत्रोंवाली गोपियाँ गोकुलकी गलियोंमें रंग बरसाती हुई जा रही हैं। उनके द्वारा उड़ाये हुए अबीर-गुलाल और बुक्का अटारियोंपर भी फैल गये हैं। वह दृश्य कितना मोहक और आकर्षक है ?

निरखन चलीं गिरिधरन-लाल कों, बनि-बनि अन-गन गोपी।
उबटी उबटन, नवल, चपल-तन, मानों दामिनी ओपी॥
पहिरैं बसन विविध-रंग भूषन, करन कनक-पिचकाई।
चंचल, चपल, बड़ी-बड़ी अँखियन, मानों आग लगाई॥
छिरकति चलीं, गली गोकुल की, कहि न जात छबि भारी।
उड़ि-उड़ि केसर बूका, बन्दन, अट गए अटा-अटारी॥

उधर श्रीकृष्ण अपने व्रजमें होली खेल रहे हैं। उनके साथ अत्यन्त सुन्दर ग्वालबाल हैं। श्रीकृष्ण स्वयं सुषमा-निधि हैं। उधरसे गोपांगनागण भी आ गयीं। उनकी सौन्दर्यमयी देहकी छाया दमकती हुई ऐसी प्रतीत होती हैं मानो बिजलीपर झाईं पड़ गयी हो।

खेलत नन्द को नन्दन होरी अपुने रुँगीले व्रज में।
बन-ठन ठाढ़े ग्वाल-बाल सँग जनु अनेक से मैन॥
आपु मदन-मोहन अति सोहन, कहा कहौं छवि ऐन।
उत तैं आईं नव-युवती-वृन्द, चन्दमुखी एक दाईं॥
चंचल तन की दमकत आभा, जनु दामिनि पर झाईं।

होली खेलते हुए जब श्रीनन्दलाल वृषभानुजीकी पौरपर आये तो अत्यन्त भोली किशोरीजी उन्हें देखते ही दौड़कर उनके सामने आ गयीं। उनकी सभी सखियाँ रंगमें मस्त थीं और सबके हाथोंमें रंगभरी सोनेकी पिचकारी थी। मनमोहनके मनको मोहनेवाली किशोरीजी उन्हें रसभरी गाली देने लगीं।

खेलत-खेलत जब लला गयो वृषभानुहि पौरि।
नवल-किशोरी भोरी आईं देखति आगैं दौरि॥
संग हली, रँग-रली, कनक की लै पिचकारी।
मोहन मन की मोहनी, देति रँगीली गारी॥

रंगभरी पिचकारियाँ छूटीं। अबीरकी झोलियाँ रिक्त होने लगीं। लाल गुलाल उड़ने लगी। वीणा, वेणु और मृदंग बजने लगे। चारों ओर नृत्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं गीत होने लगे। वसंतकी यह शोभा कहाँ देखनेको मिले। नन्ददासके प्रियतमके होलीका वर्णन उन्हींके मुखारविन्दसे सुनिये।

हो, हो होरी खेलैं नन्द को नव-रंगी लाला।
अबीर भरि-भरि झोरिन, हाथन पिचकारी रंगन बोरी,
तेसी ये ब्रज बाला॥

मूरति धरैं अनंग गावत अति तान-तरंग,
ताल, मृदंग बजावैं, मिलि वीना वेनु रसाला।
'नन्ददास' प्रभु प्यारी खेलत, रंग रह्यौ छवि बाढ़ी,
छूटी है अलक, टूटी है माला॥

श्रीकिशोरीजीकी अलकें खुल गयीं और माला टूटकर बिखर गयी। रंगोंकी बौछारसे उनकी साड़ी सनी जाने लगी।

आजु हरि खेलत फागु बनी,
इत गोरी रोरी भरि भोरी, उत गोकुल को धनी।
चोवा कों ढोवा भरि राख्यो केसर-कीच धनी,
अबीर, गुलाल उड़ावत गावत, सारी जात सनी॥

गोपबालक और ग्वालिनें सभी अपनी-अपनी टोलीमें एकत्र हैं। चारों ओर दुन्दुभि बज रही है और ढोल ठनक रही है। ग्वाले एक-से-एक व्यंग्यात्मक गीत जोर-जोरसे गा रहे हैं। ग्वालिनें भी उनसे पीछे नहीं हैं। वे भी मधुर मुस्कान, कुटिल कटाक्ष एवं ललित गीतोंके साथ अबीर-गुलाल उड़ा-उड़ाकर रंगभरी स्वर्ण पिचकारीसे ग्वालबालोंपर रंग उँड़ेल-उँड़ेलकर उत्तर देती हैं। यह दृश्य देखकर श्यामसुन्दरके प्राणप्रिय विदूषक मधुमंगलजी ताली बजा-बजाकर नाचते हैं। उनकी प्रसन्नताका पार नहीं। उनका आनन्द असीम है।

जुरे हैं कंचन-चौहटे, अपुने-अपुने टोल।
आनन्द-घन ज्यों गाजत राजत बाजत दुन्दुभि ढोल॥
बाजत चट सों पटरी, तारन ग्वारन गावत संग।
नाचत है मधुमंगल हँसि-हँसि सुन्दर बाढ्यो रंग॥

श्रीराधाकिशोरी अपने प्राणाधार आनन्दसिन्धु श्रीकृष्णके साथ होली खेल रही हैं। वे एक तो पहले ही प्रेमरंगमें रंगी थीं, अब उनपर होलीका रंग भी छा गया है। वे अबीरसे भरी अपनी झोलीके साथ ललककर अपने प्राण-प्रियतमके समीप पहुँची। उस सुखका अनुभव तो श्रीकृष्णके ही नेत्र कर सकते हैं। भक्तराज श्रीनन्ददासजी प्रेम-विह्वल होकर कहते हैं कि वह आनन्दका पारावार मेरे मनमें नहीं अँट रहा है। वे कहते हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राधा रङ्ग भरि होरी खेलैं अपुने प्रीतमके सङ्ग।
एकु तो पहले ही हती रँग-भँगी पुनि भीनी अति रङ्ग॥

× × ×

ललकि अबीर, रोरि भरि झोरी, प्रान-पियहिं पै जाइ।
सो सुख प्रिय-नैननि पहिचाने मो मन मैं न समाइ॥

श्रीकृष्णके सम्पूर्ण श्रीअंगोंपर विविध रँगोंके छींटे पड़े हैं। श्रीराधा-किशोरी उनपर अनेक प्रकारके रंगोंकी वर्षा कर रही हैं। गोपियाँ सोनेकी पिचकारियाँ भर-भरकर राधारानीके हाथों थमाती हुई उनकी सहायता कर रही हैं।

सब अँग छींटे लागी नीको बन्यौ बान।
गोरा अगर अरगजा छिरकति खेलत गोपी कान्ह॥
हाथन भरे कनक पिचकाइ भरि-भरि देति सुजान।

उमंगके साथ रंग भरनेमें दोनों ओर अत्यन्त उत्साह एवं प्रतिद्वन्द्विता बढ़ी हुई है।

बाढ़्यो है परस्पर रंग, उमगि-उमगि रंग भरनि में।

आनन्दघन श्रीकृष्णकी इस होली-लीलाके दर्शनार्थ सुर-समुदाय भी धरतीपर उतर आया है। अनेक प्रकारके वाद्य बज रहे हैं, सर्वत्र आनन्द एवं रस थिरक रहा है। वसंत मूर्त होकर उन्मत्त नर्तनमें रत है। ग्वालबाल गोपांगनागणकी रसमयी होलीके साथ ही रंगीली मुरलीकी ध्वनि मधुर अमृतधाराकी वृष्टि कर रही है।

सुर-मण्डल, डफ, वीना-झीना, बाजत रसके ऐन,
चाँचर-में-चाँचर सी चितवत, नवल तियनके नैन।
बजत चटक कठताल, तार अरु मृदुल-मुरज टंकार,
तिन संग रंग रंगीली-मुरली, बिच अमृत-सी धार॥

इधर तो होली खेली जा रही है। वाद्य, गान, रंग, गुलाल, एवं नृत्यका समा बँधा है। उधर चतुर चन्द्रावली श्रीकृष्णके पास पहुँच गयी और बोली 'श्यामसुन्दर, अब मैं राधाकिशोरीका दल छोड़कर तुम्हारी ओर हो गयी।' श्रीकृष्णने उसका विश्वास कर लिया, किन्तु उसने छलपूर्वक उनकी वंशी लेकर राधाकिशोरीको दे दी। किशोरीजी हँसकर ताली बजाती हुई जोरसे बोल उठीं—'होरी है।'

हँसत-हँसत चंन्द्रावलि उत गई। लालहि कही हौं तिहारी दिसि भई॥
छल करि मुरली लई किसोरी। हँस तारी दै बोलीं होरी॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मनमोहनकी वह पीयूषवर्षिणी मुरली अब श्रीराधाकिशोरीजीके अधरपर विराजित है। आज उससे जैसा मधुर रव निकल रहा हैं, वैसा श्यामसुन्दरके अधरपर कभी नहीं निकला। श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ललककर देखने लगे, तो किशोरजीने मुरली देनेके बहाने उन्हें अपने पास बुलाया। श्रीकृष्ण हँसते हुए अकेले ही उनके पास आये।

बाँसुरी राधा-अधर बिराजी। ऐसी कबहुँ न पिय पै बाजी॥
बंसी देन मिसि राधिका बुलाए। हँसत सुलाल अकेले आए॥

परमानन्दसिन्धु श्रीकृष्ण एवं अखिलभुवनेश्वरी श्रीराधाकिशोरीके फागमें उनके प्रेम-भावका वर्णन करनेमें श्रीनन्ददासजी अपनेको सर्वथा असमर्थ पाकर कहते हैं—

औरहु प्रेम बिबस रस कों सुख कहत कह्यो नहिं जाइ,
इहि सुख कहिबे कों नित सुरसुति कोटिक-मति सु-हराइ।
सेस, सुरेस, महेस न जानैं, अज अजहूँ पछिताइ,
इहि सुख रमा तनक नहिं पावत, जदपि पलोटत पाँइ।
श्रीवृषभानु - सुता - पद - अंबुज, जिनके सदा सहाइ,
सो रस मगन रहति अति तिन पै 'नन्ददास' बलि जाइ।

संघर्ष विचारका नहीं आग्रहका

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन पण्डित माखनलाल चतुर्वेदीको अपना एक संस्मरण सुनाते जा रहे थे और उनके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहती जा रही थी। वे कह रहे थे कि—एक बार लाला लाजपत रायने मुझे किसी संस्थामें ऊँचे पदपर काम करनेके लिए आमंत्रित किया। मैंने उनसे निवेदन किया कि आपके और मेरे विचारोंमें भेद है ऐसी दशामें मैं कैसे काम कर सकता हूँ? लालाजीने कहा—क्या विचार-विचारकी रट लगा रखी है, विचार तो बुद्धिके विकार हैं आते हैं जाते हैं—तुच्छ हैं। उनके कारण भेद कहाँ है? अहंकारका संघर्ष है। आग्रहका मतभेद है। वासनापूर्ति और स्वार्थके लिए वैमनस्य है। विचार-विचार तो सबके एक होते हैं। आओ मैं सफेद कागजपर हस्ताक्षर करके दे दूँ, तुम चाहे उसपर जो विचार लिख-कर दे दो मुझे मान्य है। टण्डनजी कह रहे थे कि इतने उदार और उदात्त विचारोंका नेता अब कहाँ है और विह्वल होकर अपने मित्रोंसे अश्रु-प्रसूनकी वर्षा कर रहे थे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नवभारत टाइम्स
१३-१-६९

श्रीमद्भागवतमें गोपीगीत

प्रकाशक : सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
'विपुल' रिजरोड बम्बई–६

पृष्ठ संख्या : २८८
मूल्य : ३.५०

समीक्षक :

शिवसहाय पाठक

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती संस्कृतके प्रकांड पण्डित हैं। श्रीमद्भागवतके तो वे मूर्द्धन्य विद्वान् हैं। महामना मालवीयजी इनकी विद्वत्ताके बड़े प्रशंसक थे। स्वामीजी द्वारा अनुवादित यह पुराण गीता प्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें उक्त पुराणके रासप्रसंगके बाईस श्लोकोंकी प्रवचनात्मक व्याख्या की गयी है। इक्कीस-बाईस श्लोकोंकी (२८८ पृष्ठोंकी) इस व्याख्यामें व्याख्या-मीमांसा-शैलीका चरम उन्मेष मिलता है। प्रत्येक शब्दकी विद्वत्ता-पूर्ण ढंगसे पूर्ण व्याख्या, तारतमिक सांदर्भिक संगति, अत्यन्त सहज-सरस और हृदयग्राही रूपमें उनकी प्रस्तुति आदिके द्वारा इन श्लोकोंका एक अन्यतम रसमय भाष्य उपस्थित किया गया है। संस्कृत-हिन्दीके कृष्णकाव्योंसे अनेक उद्धरण देकर वक्तव्यको और अधिक प्रभविष्णु बनाया गया है। श्रीमद्भागवतके गोपी-प्रसंगका यह विशद विवेचन अन्य कृष्णभक्त कवियोंके काव्योंका अनुग्रह-मर्म समझनेके लिए उपयोगी और पठनीय है।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सतिगुर प्रसाद

[भक्तप्रवर श्रीकोकिल साईं]

श्रीमैथिलि मुलिकि वसनि खिलियो खण्डू खीर पियनि।
वाञाँ पंहिजे वैघलि वतनि गरीबि श्रीखण्डि सदिके थियनि॥
सतिगुरु साणी थीं दुनि ओखड़ि घड़ी न दिसनि।
जीए मछूँ पाणी पियनि वैदेही वणे विरहिनि॥
ललन लड़ैतीजी लजिड़ी रखनि गरीबि श्रीखण्डि गदिजी वञनि।
फजुर जो फैजुको मुरिशद दियनि सुवुह जो सुवालीखाली न कनि।
अमृत वेलिड़ी य जो अरिजिड़ो मनिनि अन्नवेले माँदो न करिनि॥

कोकिलसाईंके हृदयमें मिथिलेशनन्दिनीके वनवासका वहुत दुःख है। इस पदमें राम-परिवारकी पीड़ा अनुभव करते हुए विरह-लीलाका चिन्तन करते हैं। माता कौशिल्या, सुमित्रा आदि माताएँ उर्मिला, माण्डवी आदि बहनें भरत, लक्ष्मण आदि भ्राता, विमला, चन्द्रकला आदि सखियाँ असह्य वेदना-ग्रस्त हैं। श्रीजीकी सहानुभूतिमें तड़फ रहे हैं। कोकिलसाईंका चित्त व्यथित हो जाता है। वे बराबर मंगल-कामनाकरते हैं।

हमारी स्वामिनी मैथिली महारानी अपने राज्यमें सुखसे निवास करें और प्राणनाथके साथ सुखसे खिलकर मिश्री मिश्रित दुग्धपान करें। दुग्धपानकी स्मृति होते ही कौशिल्या अम्बा द्वारा जगाकर मिथिलेश-नन्दिनीको दूध पिलानेका दृश्य, जो विवाहके पश्चात् अवधमें आनेपर हुआ था, सामने आगया। 'दूध पियो मेरी लली ललाम, बेटी वैदेही बोलो राम।' वे ही मंगलमय दिन फिर आयें, माँ कौशिल्याको दूधका पात्र हाथमें लेकर दुलार-पुचकारकर दूध पिलाते हुए देखूँ। युगल सरकार भी परस्पर दूध पिलाकर मैयाको आनन्दित करें।

मेरे प्राण तो बहुत-ही व्याकुल हो रहे हैं। श्रीजीके चरणोंका विछोह सहा नहीं जाता। पता नहीं स्वामिनी किस प्रकार होंगी। अब तो मैं भी उस वेदवती स्वामिनीके ही पास जाऊँगी।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिते होसी उते वैसा।
मुहबत मिठिड़ी गुर पै मँगे सा। जहन्नममें भी श्रीजानकी सदेसाँ॥
सतिगुर थीसीं दयाल। श्रीमैथिली मिलसीं शाल॥

मैं उनके चरणकमलोंके मधुर प्रेमकी श्रीगुरुदेवसे याचना करूँगी। मैं भले नरकमें रहूँ किन्तु जीजी जानकीकी पुकार करती रहूँ। मेरी नस नसमें निमिनन्दिनीका नेह भरा रहे। मेरा प्रत्येक श्वास श्रीसिय अम्बाका स्मरण करता रहे। सर्वदा स्वामिनीसे मिलन-सेवाका सौभाग्य समुपलब्ध रहे। मैं श्रीखण्डि स्वामिनीके ऊपर न्योछावर हो जाऊँ।

श्रीकोकिल साईंके आँखोंके आगे वार-वार वह झाँकी प्रस्तुत होती है कि वे किस प्रकार वृक्षोंकी छायामें पत्तोंकी सेजपर अधीर स्वामिनी हा नाथ! हा प्राण-नाथ!! पुकार रही हैं। आँखोंसे अश्रुधारा वह रही है। वनदेवी वासन्ती श्रीस्वामिनीका मस्तक अपनी गोदमें धारणकर स्नेहसे सम्भाल रही है। आश्वासन दे रही है।

सद्गुरु तुम्हारा यह विरह-दुःख दूर करेगा। करुणामूर्ति स्वामिनी! आपकी यह विरह-व्यथा मुझे मिले-आप सर्वदा प्रसन्न रहो। आपको यह दुर्दिन देखनेको कभी न मिले। आपने प्रियतमके साथ अनेक कष्टोंको झेलते हुए भी उन्हें कभी दुःख नहीं माना। महर्षि बाल्मीकिके आश्रममें भी सूर्यमें दृष्टि रखकर तपस्या करती हुई भी यही माँगती हैं कि सर्वदा प्रियतमके चरणोंमें निवास हो, वे सर्वदा प्रसन्न रहें।

श्रीकोकिल साईंकी श्रीसाकेत स्वामिनीमें ममत्वमयी माताकी भाँति अनन्त ममता है। इसीसे वे हमेशा आशीष देते रहते हैं। 'मछलीको जैसे निरन्तर जल प्रिय है वैसी ही प्रीति विदेह-नन्दिनीमें मेरी बनी रहे—मैं सदा ही कुशल मनाती रहूँ।' यह उनकी कामना है।

प्रातःकाल गुरुदेवके चरणमें मेरी यह विनती है कि यह सुहावनी अमृतवेला मुझे भरोसादे कि कोकिल! तुम व्यग्र न हो—तुम्हें युगलसरकार श्रीसियारामका अखण्ड मिलन प्राप्त है। प्रातःका आया हुआ भिखारी (सुबाली) खाली न जाय। मेरी झोली युगल मिलनके आनन्दसे भर दो। अब वृद्धावस्थामें तो हँसनेका दान दो कि मिलनकी मधुर झाँकी देखती हुई—प्रसन्न चित्त प्रियतमके धाम जाऊँ। ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'नवभारत टाइम्स' बम्बई
रविवार, २ फरवरी, १९६९ को प्रकाशित सम्मति

साहित्य-समीक्षा

सुबोध हिंदीमें उपनिषद् सार-तत्त्व

एक गंभीर विषयका विस्तृत और रोचक विवेचन

[मुण्डकसुधा : प्रवक्ता : स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती; प्रकाशक : ब्र० प्रेमानन्द दादा, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, विपुल, २८।१६, रिज रोड, बम्बई-६; पृष्ठ संख्या : ४४६; मूल्य : दो रुपये पचास पैसे]

शंकराचार्यजीने दो सौ-से अधिक उपनिषदोंमें-से जिन ग्यारह उपनिषदोंका भाष्य किया है, उनमें मुण्डकोपनिषद् एक प्रमुख उपनिषद् है, स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीने इस ग्रन्थमें मुण्डकोपनिषद्की विस्तृत हिंदी व्याख्या की है, इस ग्रन्थके प्रारम्भमें मुण्डकोपनिषद्का मूल पाठ दिया गया है और इसके अनंतर प्रथम, द्वितीय और तृतीय मुण्डकके प्रत्येक पदकी विस्तृत व्याख्या की गयी है, इस सदर्भमें यह विशेष उल्लेख्य है कि विद्वान् प्रवक्ताने एक-एक शब्दके मर्मतक स्वयं पहुँचने और पाठकोंको पहुँचानेका प्रयत्न किया है।

मुण्डकोपनिषद् मूलतः अथर्ववेद का है। विद्वानों और धर्माचार्यों—धर्म प्रवर्तकों—यथा रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य आदिने इसे प्रमाण रूपमें गृहीत किया है। 'मुण्डक' शब्दकी विद्वत्तापूर्ण व्याख्या करनेके अनन्तर स्वामीजीने सहज विनोदमयी शैलीमें लिखा है—'इसमें तुरीयतत्त्व आत्मरूप मुण्डका वर्णन है। जैसे अंग्रेजीमें प्रधानाध्यापकको हेडमास्टर कहते हैं और भारतमें भी प्राधान्यके लिए मूर्धन्य कहते हैं, वैसे ही उपषिनद्-मूर्द्धन्य होनेसे इस उपनिषद्का नाम 'मुण्डक' है, आश्रमातीत मूर्धन्य महापुरुषों द्वारा अपनाये जानेके कारण इसे मुण्डक कहते हैं' इसमें मूलतः पराविद्या या अध्यात्मविद्याके मर्मका प्रतिपादन किया गया है। स्वामीजीने इस उपनिषद्की यह विस्तृत व्याख्या इस रूपमें प्रस्तुत की है कि एक बार प्रारंभ करनेके बाद बिना अन्ततक पढ़े विश्राम अच्छा नहीं लगता, इस व्याख्याकी शैली बड़ी ही सहज, सरस, प्रवाह-भावमयी और हृदय-ग्राही है। निश्चय ही मुण्डक उपनिषद्की हिन्दीमें यह सर्वोत्तम व्याख्या है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डाक्टर : पण्डित

विद्यानन्द 'विदेह'

पण्डित मदनमोहन मालवीय सफलकाम हो चुके थे। हिन्दु-विश्वविद्यालय स्थापित हो चुका था और वह स्वयं उसका सुसंचालन कर रहे थे।

कलकत्ता यूनिवर्सिटीके वाइस चांसलरका एक दिन एक पत्र पण्डित मालवीयको मिला, जिसमें लिखा था, 'कलकत्ता यूनिवर्सिटी आपको डाक्टरेटकी सम्मानित उपाधिसे अलंकृत करके गौरवान्वित होना चाहती है। आशा है आप अपनी स्वीकृतिसे मुझे शीघ्र सूचित करेंगे।' एक क्षणका भी विलम्ब न कर उन्होंने स्वयं अपने हाथसे लिखकर उस पत्रका उत्तर दिया, 'मैं जन्म और कर्मसे ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मणके लिए 'पण्डित' से बढ़कर अन्य कोई उपाधि नहीं हो सकती। डाक्टर मदनमोहन कहलानेकी अपेक्षा मैं पण्डित मदनमोहन कहलाना अधिक पसन्द करूँगा। आशा है आप इस ब्राह्मणकी इस भावनाका आदर करेंगे।'

वृद्ध मालवीयजी वाइसरायकी कौंसिलके वरिष्ठ काउंसिलर थे। उनकी गहन और तथ्यपूर्ण आलोचनाओंके बावजूद वाइसराय उनकी मेधा, मधुरता, सज्जनताका बहुत कायल था। एक विशेष मुलाकातमें वाइसरायने कहा—'पण्डित मालवीय, हिज मेजेस्टीकी सरकार आपको 'सर' की उपाधिसे अलंकृत करना पसन्द करेगी। क्या आप उसे स्वीकार करेंगे ?' मालवीयजीने तुरन्त उत्तर दिया,—'महामहिम, धन्यवाद। किन्तु ब्राह्मणके लिए 'पण्डित' की उपाधि ही सर्वोपरि उपाधि है, जो मुझे वंशपरम्परासे ही प्राप्त है।'

काशीके पण्डितोंकी सभा द्वारा 'पण्डितराज' की उपाधि दिये जानेके सुझावपर उस देवताने कहा,—'पण्डितकी उपाधि विशेषणातीत है। मुझे पण्डित ही रहने दीजिये।'

जब भी किसी ब्राह्मण विद्वान्के नामके पूर्व 'डॉक्टर' शब्दका प्रयोग होता है, मुझे पण्डित मदनमोहन मालवीयकी याद आजाती है। डा० भगवानदाससे एक बार उन्होंने कहा था, 'ब्राह्मणेतर किसी भी विद्वान्के नामके पूर्व डॉक्टर शब्दका प्रयोग शोभनीय है। परन्तु एक ब्राह्मण विद्वान्के नामसे पूर्व डॉक्टर शब्दके प्रयोगमें मुझे बहुत हल्कापन-सा प्रतीत होता है।'

वह देवता अपने जीवनके अन्तिम क्षणतक विशुद्ध ब्राह्मण और शुद्ध पण्डित ही बना रहा। कभी स्वप्नमें भी उसने किसी अन्य उपाधि अथवा विशेषणकी कामना नहीं की। [सविता]

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विचार-लहरें

हरिकिशनदास अग्रवाल

मैंने बहुतसे लोगोंको देखा है कि वे लहरोंपर शान्त-चित्त ढीले होकर लेटे रहते हैं। तथा वे उन लहरोंके एकदम ऊपर ही रहते हैं और लहरें उन्हें डुबोती नहीं। मैंने एक दूसरे भी मनुष्यको देखा, जो कि तैरना नहीं जानता था, वह जब पानीमें गिरा तो जोर-जोरसे हाथ-पाँव मारने लगा फिर उसके बाद वह डूब गया।

हम संसारियोंकी भी यही स्थिति होती है। हम कुछ बनने व कुछ करनेके लिए दिन रात हाथ-पाँव मारते रहते हैं, किन्तु फिर भी हम संसार-सागरमें डूब ही जाते हैं। लहरोंसे निकलना असंभव-सा होता है।

कोई भी मनुष्य विचारोंकी दौड़से अपने लक्ष्य परम शान्तिको प्राप्त नहीं कर सकता है। परमशान्तिके लिए तालाबमें उठती हुई लहरोंके ऊपर पड़े हुए निश्चेष्ट मनुष्यकी तरह जब विचारकी तरंगोंके ऊपर तटस्थ होकर देखना शुरू कर देता है, तो वे तरंगें बाधक नहीं होती या डूबनेका कारण नहीं बनतीं, किन्तु यदि उन्हीं तरंगोंके अन्दर यदि हम बिना युक्तिके हाथ-पाँव मारें, तो हम डूबे बिना कभी नहीं रह सकते।

मनमें उठते हुए विचारोंको दबानेसे, विचार दबते नहीं हैं। वह तो एक विचार दूसरेको, तीसरेको फिर उससे चौथा विचार फिर जब विचारोंके साथ हमारा तादात्म्य हो जाता है अर्थात् विचार प्रबल हो जाते हैं व प्रबल विचारोंकी तरंगोंके अन्दर, उन्हें दबानेकी चेष्टा एक बिना तैराकका जलमें हाथ-पाँव मारने जैसा ही है।

जिन लोगोंने तैरनेकी कलाको सीख लिया, वे चाहे उलटे पड़ें या सीधे शरीरको ढीला छोड़ शान्त-भावसे पड़े रहते हैं, व लहरें उनका कुछ बिगाड़ नहीं पातीं। लहरें आती हैं, चली जाती हैं किन्तु मनुष्य ज्योंका त्यों लहरोंमें पड़ा रहता है। इसी प्रकार जब हम साक्षी-भावसे मनको देखते हैं, तो मनमें उठती हुई लहर आती व चली जाती हैं और हमारे तटस्थ होनेके कारण विचारोंकी तरंगें हमें बन्धनकारी नहीं होतीं। यह उन लोगोंकी विद्या है जिन लोगोंने किसी तैराकरूपी गुरुसे इस रहस्यको समझ लिया। वर्ना हाथ-पाँव मारते हुए तो सारा संसार डूबता चला जा रहा है।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विवेक रश्मि

[सद्विवेक, सदाचारका प्रेरक आध्यात्मिक मासिक पत्र]

- प्रतिमास $\frac{१८ \times २२}{८}$ आकार के ८० पृष्ठ
- प्रतिमास १६ पृष्ठ बालकों तथा १६ महिलाओं के लिए।
- योग-साधन, स्वास्थ्य-विज्ञान, श्रुति-स्मृति-सुधा, कहानी तथा चरित के नियमित स्तम्भ।
- साधन-प्रश्नोत्तरी तथा महापुरुषों के लेख।
- सम्पूर्ण परिवार के लिए उपयोगी।

वार्षिक मूल्य १०/- एक प्रति १/-

सम्पादक—सुदर्शन सिंह 'चक्र'

पता : परमार्थ आश्रम, स्वामी शुकदेवानन्दमार्ग, हरिद्वार

लेखकों से—बालस्तम्भ, महिला स्तम्भादि सभी स्तम्भोंके लिए सामग्री सादर आमन्त्रित है।

आधुनिक स्वास्थ्य और सदाचारकी प्रमुख पत्रिका

स्वास्थ्य और सौंदर्य

[Health and Beauty]

शारीरिक, मानसिक, आत्मिक व सामाजिक

प्रधान सम्पादक : योगेन्द्रनाथ मिश्र

चन्दे की दर

१ प्रति ·७५	आजीवन	२ वर्ष १४·००
१ वर्ष ८·००	केवल १००·००	५ वर्ष ३२·००

मुख्य कार्यालय :—२४/१५७, शक्तिनगर, दिल्ली–७

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

WITH
BEST
WISHES

From :

CHAMPAKLAL & BROS.
Private Ltd.

Cotton
&
Textile Waste Exporters

Phone : 25 - 3215
Gram : WASTEPAPER
Codes : A.B.C. 6th Bentley's 2nd
Bentley's Complete and Private

Registered Office
45-A, Yusuf Building
49, Veer Nariman RD.,
Fort, **Bombay.**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

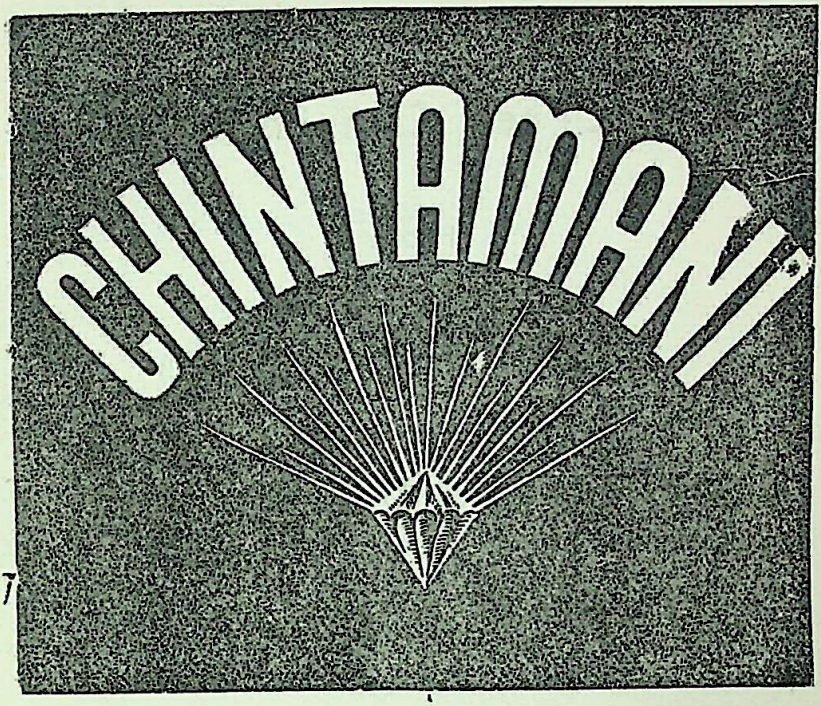

PUBLISHED BY

Satsahitya Prakashan Trust

Vipul

28/16 Ridge Road

BOMBAY—6 (W. B.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best Compliments

From

Chintamani

SATSAHITYA PRAKASHAN TRUST

ON THE OCCASION

OF

HOLI FESTIVAL

1969

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

GURU - PURNIMA

Revered Swamiji and Friends :

I consider it a privilege to have been asked to say few words on an occasion like this.

A well-known English Poet of victorian age, Mathew Arnold, says somewhere :

"Only they are able to enjoy this world,
who begin with the world unseen,
only they can enjoy, who abstain from it."

Of all the traditions that we have inherited from time immemorial, Guru Purnima, is the noblest one from the point of dedication and surrender by one Human Soul to another in unflinching faith and veneratian. The sanctity and grandeur that has come to be attached to this unique institution is quite well-known to us. In no country of the world, there exists an institution like 'Guru', who takes upon himself voluntarily sacred obligations of imparting religious and spiritual education without any hope of material reward. And this is what distinguishes our country and its culture from the rest of the world.

Guru, as we understand, is a depository, a granary of deep and lofty knowledge of Highest Hindu Philosophy and meta-physics. The very existence of Guru in the midst of this sordid world full of perils, privations and pitfalls is by itself a great blessing.

Subject-matter of to-day entails a little digression and prompts me to have a look at the history of various civilisations of the world. The glorious civilisation of Rome, Greece, Egypt and Babylone flourished for the time, collapsed and dlsappeared without leaving any trace on the foot-prints of time.

India and its civilization is the only one that survives,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

flourishes and scintilates with new energy, new flash inspite of its long, are Chequered history. It is ANAADI, अनादि, It is as old as Human History itself. Our religion is the only one that has successfully and convincingly dealt with Eternal aspects of Human soul and its fundamental and integreted relationship with the universality of supreme, cosmic spirit. Our religion is a way of life, its emphasis is more on the spirit on the eternal and not on the ephmeral.

Now the question of questions is, "who kept this thing alive ? Who carries forward and forward this flame of culture ? simple yet significant but subtle answer Is "GURU". Guru is the core and kernal of this unbroken continuity of our culture.

And our revered Swamiji, Shri akhadanand Saraswati, provides a class icilluslration of what I have been telling.

He is the living symbol, a heart-throb, a rich treasure house, an unfailing light-house of the best that we have in our religion and philosophy. He is a spiritual AKSHAYA-PATRA. Swamiji's association is an education in spirituality, an opportunity to cultivate moral and ethical standards. His association can provide a scope for meaningfull, purposeful and creative life. He solves the insoluble. A Restless mind gets settled, a boistrous spirit gets stabilised by his soothing advice. All his religious discourses are and can form a part of priceless legacy, if scruplously preserved, and are unsurpassed from the point of simplicity of diction, lucidity of thought, profundity of feelings and mystical exaltution. Every word that he speaks, every phrase that flows and every sentence that he weaves, of course effortlessly, has an atomic strength of spiritual import.

And last but not the least, in Swamiji we notice the steady and steadfast sobriety of स्थित प्रज्ञ, tke Eternal purity and sacredness of holy water of river Ganges and devotional fervour of soft and dancing ripplings of river Yamuna-all these qualities blended happily with the true spirit of TYAGA AND VAIRAGYA of Lord Siva.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

TALKS WITH SHREE RAMDAS

(Kanomgarh)

(By Shri Surya Prakash)

A devotee : Papa, you ask us to set apart even a little time morning and evening exclusively for Japa, Dhyan and remembrance of God. How would that be possible in a case like mine ? I live in Kalyan Camp and work in an office at colaba. I leave my house at 7.30 a.m. and reach back home late at night, dead tired and fatigued. Most of the days, I cannot even meet my children because they are in bed during the hours I am at home. How to find time for Japa and all that ?

Papa (Swami Ramdas) made no answer. He seemed to ignore the question. However, after a lapse of about 15 minutes, he turned towards the questioner and asked :

Papa : What is your Salary ?

Devotee : Rs. 350/- amonth.

Papa : How many members have you in your family ?

Let us commence this day with a prayer to Swamiji to bless us with true wisdom of Synthesis and harmony and that absolute knowledge, which is the ultimate goal of mankind :

ॐ तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।
ओजोऽसि ओजो मयि धेहि ॥

July 10 1968. (J. B. Surti)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Devotee : My old mother, my wife and four children-total seven including myself.

Papa : Do you find your salary enough for comfortably maintaining your family ?

Devotee : How is that possible, Papa, on such a meagre Salary ? Even to meet our bare necessities becomes a hard and worrysome problem every month.

Papa : Supposing your boss offered you Rs. 200/- more every month provided you put in two hours extra work every-day, would you accept his offer ?

Devotee : That would be indeed God send, Papa. I would accept most willingly. It would solve all my money problems.

Papa : That is an answer to your question. For Rs. 200/-, you could manage to find extra two hours, while, for God, you cannot find even half an hour. That shows where the inclination of your mind lies-towards the things of the world but not towards God. If you had real love and thirst for God, your question would not arise.

Papa (Swami Ramdas) : Take refuge in Ramnam. The holy name unlocks the gates of divine joy within you. Chant it constantly with all love and faith. The name should be such that you can repeat it always - *in all places and at all times.*

A Devotee : Should we repeat Ramnam even when

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

attending to calls of nature ? The lavatory is an unclean place !

Papa : Nothing is more unclean or filthy than your body, which is in fact a *walking commode.*

Can you ever get away from your body ?

Vithal's holy name was constantly on the tongue of Saint Tukaram of maharashtra. People complained to the head-man of the village that Tukaram repeated the Name even when answering calls of nature thus poluting the sacred and pure Name of the Lord. Tukaram was reprimanded and asked not to do so.

So the next day at the time of call of nature, he caught hold of his tongue with his fingers in order to prevent it from repeating the Name. Immediately, the Name of vithal was heard loudly coming out of every pore of his body-his entire being was so completely saturated with the repitition of the sweet Name. The people were struck with wonder and no more restrictions were imposed upon him any more.

Bhagavan's Name purifies absolutely all the so-calld impure places and situations, while, without the feeling-presence of God made manifest by the Name, all the seemingly clean things and places are in fact most filthy and unclean. ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ALCOCK, ASHDOWN & Co., Ltd.

Bombay & Bhavnagar, Structural, Mechanical, Electrical

And

Marine Engineers

★

Manufacturers of :

Rly. Bridge Girders, Heavy Light Structures, Petro-Chemical & Fertilizer Plants. Pressure Vessels, Transmission Line Towers

Rly. Crossings & Switches, Grey Iron Castings, E. C. T. Jetty & Cargo Cranes, 'KELVIN' Marine & Industrial Diesel Engines, Launches Tugs, Barges & Steel Trawlers

Regd. Office :

16, Bank Street, Fort,

Bombay-1.

Phone : **251321** *Grams :* **'ASHDOWN'**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SWADDESHI

COTTON MILLS COMPANY Ltd.

—Cotton Mills—

- Swadeshi Cotton Mills Co. Ltd. KANPUR
- Swadeshi Cotton Mills Co. Ltd. PONDICHERRY
- Udaipur Cotton Mills. UDAIPUR

—Staple Fibre & Cotton yarn Mills—

- *Swadeshi Cotton Mills Co. Ltd. NAINI*

—Sugar Mills—

- Ganes Sugar Mills Ltd. Anandnagar
- Shree Anand Sugar Mills Ltd, Khalilabad

—Collieries—

- Samla Collieries Ltd. PANDAVESHWAR (W. B.)
- Jaipuria Kajora Collieries Ltd. ANDAL (W. B.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

For your requirements of

ALL GADES OF CASTOR OIL
BLOWN CASTER OIL
DEHYDRATED CASTOR OIL
HEPTALDEHYDE
UNDECYLENIC ACID
LENOLIC ACID
RICNOLEIC ACID Etc

Please Contact

JAYANT OIL MILL

13 Sitafalwadi, Mount Road, Majgaon,
BOMBAY-10

Phone : 379444/42/43

With best wishes from :-

Telephone : 473526

M|S. Natvarlal Govindji Zaveri

Jewellers

264 C. AMARATLAL MANSION
MATUNGA (C. Rly.)
BOMBAY-19

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

मैं आप लोगोंमें सहृदयता, मानसिक पवित्रता और राग-द्वेषराहित्यकी प्रतिष्ठा करता हूँ। जैसे अवध्य गाय अपने छोटे-से बछड़ेसे स्नेह करती है, वैसे ही आप सब परस्पर एक दूसरेसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें।

श्रीपूर्णवस्त्रभंडार

२२२ नवी गली, मंगलदास मार्केट

बम्बई—२

बाम्बे डाइंग एण्ड मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी
बम्बई
के
(फेन्ट) कटपीस वस्त्र के थोक विक्रेता
की

शुभ कामनाएँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि
विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः ॥"

—यजुर्वेद २२।२२

"हे बड़ी माँ! तुम सम्पूर्ण सुखोंकी दाता हो। तुम्हारा स्वरूप विशाल है। तुम स्वयं देवता हो और देवताओंकी माता हो। तुम सम्पूर्ण विश्वको अपने उदरमें धारण करती हो और उसका भरण-पोषण करती हो। सब प्राणी तुम्हारी गोदमें रहकर तुम्हारा ही दूध पीते हैं। तुम अपनी विशालताको और बढ़ाओ, अपनेको और दृढ करो और अपने-आपको कभी क्षीण मत करो।"

फोन—39736
तार—RAIBANSI

दि चिरीमिरी कॉलिअरी कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड

१८।२२ शेखमेमन स्ट्रीट
बम्बई—२
की

शुभकामनाएँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best Complements from

Bombay Oil Industries Pvt. Ltd.

Manufacturers of :

Saffola

Cocovite

and

Parachute Brand

Filtered & Refined Cooking

Oils

and

'Everest'

Brand Stearic Acid

★

KANMOOR HOUSE

BOMBAY - 9 BR

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

For all Types

OF

Electric wires and cables

Raval & co.

LARGEST STOCKISTS OF

I.C.C. PARAMITE + C.C.I. TROPODUR + L.T. & H.T.

WIRES AND CABLES TRAILING FLEXIBLES &

CONTROL CABLES A SPECIALITY

HEAD OFFICE:

SHREEJI BHUVAN, LOHAR CHAWL

POST BOX No. 2279

BOMBAY-2

PHONE 23720 20233 28426

Grams : Godspeed

Branch Office:

12—B, LOWER CHITPUR ROAD,

CALCUTTA--1

Phone : 345651

Grams: YOURCHOICE

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ALUCOIN

Supplying Industrie's Increasing demand of the following various ALUMINIUM products from one source :

Virgin Aluminium Ingots and Aluminium Alloy Ingots

Aluminium Notched Bars and Shots

*PLAIN & CORRUGATED SHEETS,

*CIRCLES

*PLATES

*COILS & STRIPS

*VARIOUS EXTRUDED SECTIONS

*A.A.C. and A.C.S.R. (Conductors)

*Various Range of Foils

*Alumina Hydrated and Alumina Caloined

Aluminium corporation of India Ltd.

Sole Selling Agents : J. K. Alloys Limited

7, Council House Street

CALCUTTA—1

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

WITH COMPLIMENTS OF :—

R. M. Appliances
Private Ltd.

Manufacturers of :
FIRE FIGHTING EQUIPMENTS
2, BRABOURNE ROAD : CALCUTTA—1
Phone : 22-4341
Gram : ROBIEAN

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The goodness of a name

A name is a good thing to have. It tells people who you are and establishes your identity. All names have meanings. Some of these meanings are self-indicative, like Rose; and Shanti for Peace; and ACC for quality cement. Some names have become famous because they have been made so by illustrious men and women who bore them in the past. Others have achieved fame by association over the years with a product and a tradition, like ACC which is a household word for cement of the highest quality. You may be sure that such people take great care to guard their good names by the consistent excellence of their products. So when you are buying cement next, you can specify ACC in the fullest confidence that you are buying not only a good product with a good name, but the tradition that goes with the name.

ACC

is a good name. You can depend on ACC

THE ASSOCIATED CEMENT COMPANIES LIMITED
The Cement Marketing Company of India Limited

335 A

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best complements

From

BRITISH PHARMACEUTICAL LABORATORIES

Manufacturers of Pharmaceuticals

BOMBAY - 2.

Sole Distributors :
Messrs.
BIPCO SALES CORPORATION.
Anand Bhuwan, 2nd Floor,
Princess Street,
BOMBAY - 2.

Stockists :
Messrs
BENJAMIN & SADKA,
Anand Bhuwan,
Princess Street
Bombay - 2

ફુ.ગ્રે.લા.નં. C ૧૭૦ C૧૦ B ૧૫૩
સે.ટે.નં. NID ૨૦૩૯ તા. ૧-૧-૬૦

351869

ANANDJI PREMJI & Co.

આણંદજી પ્રેમજીની કું.

મગ તથા અડદના
મસાલેદાર પાપડ વાપરો

સર્વે જાતના
અનાજ તથા
કરીયાણાના
વેપારી.

સ્પેશીઅલ રેસછાપ
હીંગ
ખડા અને પાવડર વાપરો

ઠે. બનામહોલ લેન, બીરલા મેન્શન, પ્રાર્થના સમાજ, મુંબઈ,૪

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

INTERESTED IN RECURRING DEPOSIT?
CALL AT

THE CENTRAL BANK OF INDIA LIMITED
Regd. Office: Mahatma Gandhi Rd., Fort, Bombay-1 ☐ V. C. Patel (Chairman)

With best compliments from :

The Mahavir Printing Works,

Sambava Chambers,

SIR PHEROZESHAH MEHTA ROAD

FORT : BOMBAY-1

Phone : 262785

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With Best Complements From

"MOUNT UNIQUE"

11Th Floor. Block 86.

Pedder Road, Bombay 26.

Chhotalal N. Shah

10 , Audiappa Naick st.

Sowcarpet. Madras 1.

PHONE : 33325

With Complements

FORM

Dhanamall Silk Mills

DADI MANSION

BEHIND METRO CINEMA,

BOMBAY 1.

TELEGRAM : DHANAMALL

PHONE : 243358

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best compliments :

Gram : Phones : { Show Room : 356497
Residence : 357015

PRANSUKHALAL BROTHERS

JEWELLERS

Agt.—Mrs. D. D. Vasudeva

7 New Queens Road, Opera House,

BOMBAY—4

With best compliments :

GRAMS : 'SHOWINDOW' PHONE : 352725

Bhgat Brothers

JEWELLERS & DEPARTMENT STORE

PATEL CHAMBERS

Sandhurst Bridge

BOMBAY—7

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

WITH

BEST

WISHES

From :

Jagjivan-Pragji

&

Co.

5th Lane

MANGALDAS MARKET

BOMBAY-2

CHINTAMANI

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बैंक सम्बन्धी सेवाएँ?

अर्थात्!
दी
बैंक औफ इन्डिया
लि.

With best compliments from :--

Gram : "CACTINA" (KB)

ATCO PHARMA LABORATORIES

Pharmaceutical Manufacturers

Labs : *Phone :* 376154
110, Reay Road
BOMBAY - 33.

Office : *Phone :* 310805
133, Princess Street,
BOMBAY - 2.

Prestige Products :

OXYMYCIN INJ. & CAPSULES
A.R.C. TABS.
CALBON INJ. & LIQUID
TETKIDE CAPS., SYRUP & DROPS
HISTALON EXP.
BRANOMALT
ATCOBEX-12
(Comb pack) INJ

atco
LABS

GRAMS : CACTINA
PHONE : 310805

ASIAN TRADING COMPANY

Laboratory Chemical and Pharmaceuticals
135, Princess Street.,
BOMBAY - 2.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Well Wisher

Well Known Products :

* BHARAT VELVET
* BHARAT TERENE SUITINGS
* BHARAT TERENE SHIRTINGS
* NYL-ON TERENE SAREES & BUSH SHIRTING

Manufactured by :—

BHARAT VIJAY VELVET & SILK MILLS

Proprietors :

The Aditya Texttile

Industries Pvt. Ltd.

Kurla Andheri Road,

Bombay—70

Phone : **55146/47**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ श्रीहरिः ॥

आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधो महारथो जायताम्, दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्। —यजुर्वेदः २२।२२

"हे परमेश्वर! हमारे राष्ट्रमें सर्वत्र ब्रह्मतेज-सम्पन्न ब्राह्मण जन्म लें: अस्त्र-शस्त्र-विद्यामें निपुण, शत्रुको भलीभाँति पीड़ित करनेवाले महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों। इस यजमानकी गौएँ दूध देनेवाली हों, बैल भार वहन करनेवाले और अश्व शीघ्रगामी हों। स्त्री सर्वगुण-सम्पन्न तथा रथमें बैठनेवाले पुरुष विजयशील हों। हमारे घरमें शूर-वीर युवा पुत्र हो। मेघ हमारी इच्छानुसार वर्षा करें। ओषधियाँ परिपक्व एवं फलवती हों। हमें योग्य अर्थात् अलब्धका लाभ और क्षेम अर्थात् प्राप्तका संरक्षण प्राप्त हो।"

शुभ कामनाओं सहित

दि खटाउ मकनजी स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी लिमिटेड

—रजिस्टर्ड आफिस—

लक्ष्मी बिल्डिंग,

६, बेलार्ड एस्टेट फोर्ट,

बम्बई

के

सौजन्यसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्तामणि

रजि० सं० एल्० ६९९

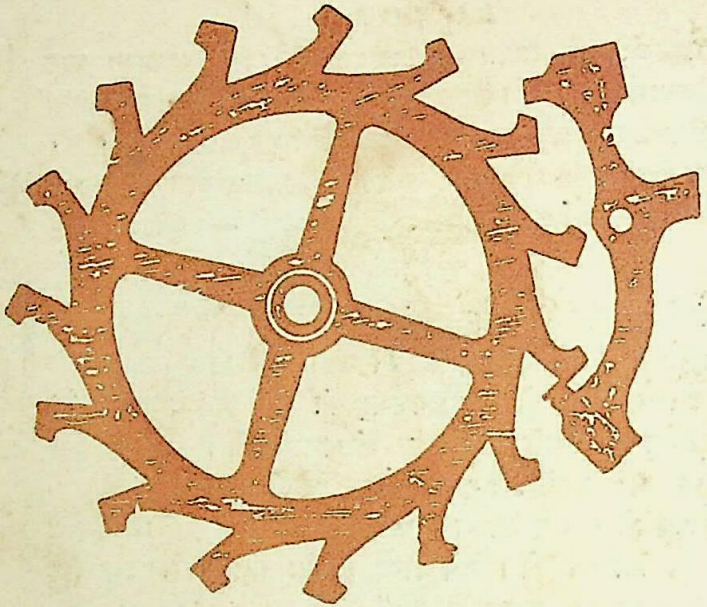

"हर क्षण, हर घड़ी समृद्धि की ओर"

औद्योगिक चक्र घूमते ही राष्ट्र का कलेवर बदल गया और हर क्षण, हर घड़ी उसकी समृद्धि में निखार आने लगा। इतना तीव्र, इतना सुनिश्चित और प्रेरक है यह चक्र और साथ ही इतनी दूर तक असर डालने वाला भी कि दलितावस्था में पड़े लाखों की जिन्दगी बदल गयी, उसके ओठों पर मुस्कराहट आ गयी और उन्हें अपने अस्तित्व का नया बोध होने लगा। जे०के० आर्गनाइजेशन पिछले डेढ़ सौ वर्षों से यही करता आ रहा है। आज हमारे उद्योगों की शृंखला में, जिसमें मशीनरी से लेकर पेंट तक, जूट से लेकर टाइप राइटर तक, टेक्स्टाइल से लेकर केमिकल तक सब कुछ निर्मित होता है, करीब ४५,००० व्यक्ति संलग्न हैं। हमारा प्रयास है जीवन को परिपूर्ण और जीने योग्य बनाना।

जे.के. ऑरगनाइज़ेशन

कानपुर • बम्बई • कलकत्ता

भारत का एक विशालतम औद्योगिक और व्यावसायिक संगठन

सत्साहित्य प्रकाशनट्रस्ट, बम्बईके लिए विश्वम्भरनाथ द्विवेदी द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा आनन्दकानन प्रेस, सीके. ३६/२० वाराणसीसेमुद्रित।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi